स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटकों में राजनैतिक मूल्यबोध

SWATHANTHRYOTHAR HINDI NATAKOM ME RAJANAITHIK MOOLYABODH

Thesis submitted to
COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY
for the Degree of

Doctor of Philosophy

By

V. G. MARGRET

HEAD OF THE DEPARTMENT
Prof. (Dr.) M. EASWARI

SUPERVISING TEACHER
Prof. (Dr.) P. A. SHEMIM ALIYAR

DEPARTMENT OF HINDI
COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY
KOCHI - 682 022

1994

C E R T I F I C A T E

This is to certify that this thesis is a bonafide record of work carried out by Mrs.V.G.MARGRET under my supervision for Ph.D (DOCTOR OF PHILOSOPHY) degree and no part of this has hitherto been submitted for a degree in any University.

Department off Hindi,
Cochin University of
Science and Technology,

Kochi - 682 022

Dated: 03.10.1994

(PROF.(Dr.)P.A.SHEMIM ALIYAR)

SUPERVISING TEACHER

A C K N O W L E D G E M E N T

This work was carried out in the Department of Hindi, Cochin University of Science and Technology, Kochi - 682 022. I sincerely express my gratitude to the Cochin University of Science and Technology for the help and encouragement.

Department of Hindi,
Cochin University of
Science and Technology,

Kochi - 682 022

03.10.1994

(V.G.MARGRET)

विषय-प्रवेश

पृष्ठ संख्या

पहला अध्याय — 1 - 42

प्राक्स्वतंत्रता कालीन नाटकों की राजनैतिक चेतना

परतन्त्र भारत की राजनैतिक परिस्थितियाँ - प्राक्स्वतंत्रता कालीन नाटकों में अभिव्यक्त राजनैतिक चेतना - भारतेन्दु युगीन नाटक (1850 से 1900 तक) - भारतेन्दु हरिश्चन्द्र - प्रतापनारायण मिश्र - पं. बालकृष्ण भट्ट - राधा चरण गोस्वामी - राधाकृष्ण दास - प्रसादयुगीन नाटक (1921 से 1935 ई. तक) - जयशंकर प्रसाद - बदरीनाथ भट्ट - डॉ. बलदेव प्रसाद मिश्र - सुदर्शन - प्रसादोत्तर युग - (पूर्वार्द्ध 1935 से 1947 तक)

दूसरा अध्याय — 43 - 86

स्वातंत्र्योत्तर भारत की राजनीतिक परिस्थितियाँ

परिवेश के प्रति रचनाकार की प्रतिक्रिया - राजनीतिक चेतना ऐतिहासिक संदर्भ में - कोणार्क - शारदीया - आषाढ़ का एक दिन - आठवाँ सर्ग - उत्तर प्रियदर्शी - हानूश - कबिरा खड़ा बाज़ार में - कालजयी - समकालीन राजनीतिक खोखलेपन की अभिव्यक्ति - पौराणिक प्रसंगों के वातायन से - पहला राजा - अन्धा युग - एक कंठ विष पाई - नरसिंह कथा - कलंकी - सूर्यमुख - कथा एक कंस की - प्रजा ही रहने दो -

पृष्ठ संख्या

अरे मायावी सरोवर - कोमल गांधार - माधवी -
भूमिजा - प्रदूषित राजनीति - समसामयिक प्रसंग और
पात्रों के ज़रिए - बकरी - अब गरीबी हटाओ - लड़ाई -
सिंहासन खाली है - नागपाश - आज नहीं तो कल -
शुतुरमुर्ग - रोशनी एक नदी है - रसगन्धर्व - इतिहासचक्र -
मरजीवा - आला अफसर - रक्तकमल - अब्दुल्ला दीवाना -
युद्धमन - त्रिशंकु - टूटते परिवेश - एक सूत्र में पिरोये गये
समकालीन प्रसंग और पौराणिक प्रसंग - मिस्टर अभिमन्यु -
एक सत्य हरिश्चन्द्र - एक और द्रोणाचार्य - शम्बूक की हत्या

तीसरा अध्याय 87 - 135

सत्ता की खुमारी में मस्त राजनीतिज्ञ

गान्धीवाद का हनन - दल-बदल राजनीति - चुनाव के
हथकंडे - रिश्वतखोरी - सत्ता का मोह - प्रजातंत्र का
खोखलापन - कलाकारों पर दबाव - धर्म और राजनीति का
गलबाहीं संबंध - राजनीति के कुचक्र में नारी की अस्मिता।

चौथा अध्याय 136 - 166

आम जनता का शोषण

आमजनता के शोषण के कारण - बिगडी हुई आर्थिक
स्थिति - आम जनता की निरक्षरता - कायर आमजनता -
आमजनता में आत्मसुख की आसक्ति - युद्ध की विभीषिका से
संत्रस्त आमजनता - जनता का आपसी संघर्ष ।

पृष्ठ संख्या

पाँचवाँ अध्याय 167 - 195

शोषित आमजतना के जुझारू तेवर

सत्ता से फक्कड व्यक्तित्व की टकराहट - नई पीढी का जागरण - एकता में शक्ति है - विद्रोह का स्वर - अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता ।

उपसंहार 196 - 206

संदर्भ ग्रंथ सूची 207 - 220

अपनी ओर से

इस शोध-प्रबन्ध का विषय है "स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटकों में राजनैतिक मूल्यबोध" । जहाँ तक मुझे ज्ञात है, इस विषय पर इस विभाग में कोई शोध नहीं हुआ है । शोध के लिए मैं ने स्वातंत्र्योत्तर युग (1947-1990) के प्रतिनिधि नाटककारों के 41 नाटकों का विश्लेषण किया है ।

स्वातंत्र्योत्तर कालखंड में राजनीति का हमारे जीवन पर पहले से कहीं अधिक गहरा प्रभाव दिखाई पडता है । राजनीति आज पूरे जीवन को घेरकर आगे बढ़ रही है । देखते-देखते राजनैतिक स्थितियाँ तेज़ी से बदलती जा रही हैं । आज कोई ऐसा क्षेत्र नहीं बचा, जो अपने आपको राजनीति की पैंतरेबाजी से मुक्त रख सकें । सारे जीवन के मूल में राजतन्त्र का बढता दबाव द्रष्टव्य है ।

परिवेश से असंपृक्त रहना किसी भी संवेदनशील रचनाकार के लिए संभव नहीं । अतः यह तो स्वाभाविक है कि स्वतंत्र भारत के लेखकों की रचनाओं में राजनीतिक परिस्थितियों का गहरा प्रभाव है । स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटककारों ने भी राजनीति के प्रभाव को नज़रअंदाज नहीं किया है ।

मैं ने इस शोध प्रबंध को पाँच अध्यायों में विभक्त किया है । मेरा विचार है कि प्राक्स्वतंत्रता कालीन नाटकों में अभिव्यक्त

राजनैतिक मूल्यबोध की चर्चा के बिना स्वातंत्र्योत्तर कालीन नाटकों के मूल्यबोध की चर्चा अधूरी रह जायेगी । इसलिए मैं ने विषय पर सीधे आने से पहले प्रथम अध्याय के रूप में प्राक्स्वतंत्रता कालीन राजनैतिक परिस्थितियों तथा प्राक्स्वतंत्रता कालीन नाटकों की राजनैतिक चेतना का एक परिचय दिया है । इस अध्याय के प्रारंभ में मैं ने राजनीति संबन्धी विभिन्न परिभाषायें उद्धृत करके राजनैतिक मूल्यबोध का परिचय दिया है । उसके बाद भारतेन्दु और प्रसादयुगीन नाटकों में अभिव्यक्त राजनैतिक मूल्यबोध व्यक्त किया गया है ।

इस शोध प्रबंध का दूसरा अध्याय है "स्वातंत्र्योत्तर भारत की राजनैतिक परिस्थितियाँ"। इस अध्याय में स्वातंत्र्योत्तर काल के राजनैतिक परिवेश में जो गतिविधियाँ नज़र आती है, उनका उल्लेख किया गया है । राजनैतिक परिस्थितियों का अध्ययन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि स्वातंत्र्योत्तर राजनैतिक माहौल, प्राक्स्वतंत्रता कालीन माहौल से भिन्न है । स्वातंत्र्योत्तर नाट्यक्षेत्र के प्रमुख हस्तियों ने बदलते राजनैतिक मूल्यबोध को भली-भाँति पहचान लिया । इसकी स्पष्ट अभिव्यक्ति देनेवाली रचनाओं का सामान्य परिचय भी मैं ने इस अध्याय में दिया है ।

तीसरा अध्याय है - "सत्ता की खुमारी में मस्त राजनीतिज्ञ" । इसमें आज के झूठे तथा स्वार्थी राजनीतिज्ञों की असलियत का पर्दाफाश हुआ है ।

चौथा अध्याय है "आम जनता का शोषण" । मैं ने इस अध्याय में मुख्य रूप से इस मुद्दे पर ज़ोर दिया है कि देश की भोली-भाली निरीह आमजनता किस प्रकार सत्ता की खुमारी में मस्त राजनीतिज्ञों के शोषण की शिकार बनती जा रही है ।

इस शोध प्रबंध का पाँचवाँ अध्याय है "आम आदमी के जुझारू तेवर" । जब जनता शोषण की पराकाष्ठा पर पहुँचती है तब अत्याचारी व्यवस्था के विरुद्ध आवाज़ उठाती हैं । अपने अधिकारों के प्रति वे अवगत हो जाती हैं । दासता की मनोवृत्ति से अपने आपको उबारने के लिए प्रयत्नशील हो जाती है । आज की इस स्थिति का विश्लेषण इस अध्याय में हुआ है ।

उपसंहार में इन पाँचों अध्यायों के विवेचन से प्राप्त निष्कर्ष है ।

यह शोध प्रबंध इस विभाग के प्रोफसर डॉ. पी. ए. षमीम अलियार के विद्वतापूर्ण निर्देश में संपन्न हुआ है । विषय चुनाव से लेकर इसकी प्रस्तुति तक उनके उपदेश तथा स्नेहमय व्यवहार से मुझे प्रोत्साहन मिला है । इसके लिए मैं उनके प्रति बहुत आभारी हूँ ।

इस विभाग की अध्यक्षा प्रोफसर डॉ॰ एम॰ ईश्वरी से समय समय पर मुझे निर्देशन एवं प्रोत्साहन मिला है। इसके लिए भी मैं बहुत आभारी हूँ।

इस विभाग के भूतपूर्व अध्यक्ष डा॰ विजयनजी तथा अन्य सारे अध्यापकों तथा मेरे समस्त गुरूजनों के सामने मैं नतमस्तक हूँ जिनके मार्ग निर्देशन, ममतामय प्रेरणा एवं प्रोत्साहन इस शोध प्रबन्ध की पूर्ति में काम आये हैं।

इस विभाग के पुस्तकालय की अध्यक्षा श्रीमती कुंजिकावुकुट्टी तम्पुरान और पी॰ ओ आन्टेणी के प्रति भी मैं अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ।

कोचिन विश्वविद्यालय के प्रति मैं विशेष कृतज्ञ हूँ जहाँ से मुझे शोध करने की सारी सुविधायें प्राप्त हुई थी।

मैं सेंट. तेरेसास कॉलिज की प्रिंसिपल सिस्टर एमिलिन, हिन्दी विभाग की अध्यक्षा प्रो॰ डॉ॰ जी शान्ताकुमारी तथा अन्य सारी अध्यापिकाओं के प्रति भी हार्दिक आभार व्यक्त करना चाहती हूँ जिन्होंने मुझे इस शोध प्रबंध की पूर्ति के लिए प्रेरणा एवं प्रोत्साहन दिये हैं।

मित्रों के प्रति भी मैं कृतज्ञ हूँ जिन्होंने इस शोध कार्य में अवश्य प्रेरणा एवं सहायता दी है ।

इस अवसर पर, मैं इसकी पूर्ति में अपने पति, माता-पिताओं, भाई-बहनों और बंधुजनों के स्नेहपूर्ण प्रोत्साहन एवं योगदान को भी याद करती हूँ ।

हिन्दी विभाग
कोचिन विश्वविद्यालय
कोचिन - 682022.

मारग्रेट. वी. जी

पहला अध्याय

प्राक्स्वतंत्रता-कालीन नाटकों की राजनैतिक चेतना

पहला अध्याय

प्राक्स्वतंत्रता कालीन नाटकों की राजनैतिक चेतना

समाज को नियंत्रित करनेवाली महत्वपूर्ण नीति है "राजनीति" । मनुष्य को भौतिक सुख-सुविधायें प्रदान करके, उसे नैतिकता के मार्ग पर आगे बढाना इसका लक्ष्य है । इसलिए समाज के हर व्यक्ति को आगे बढने का अवसर देना, इसकी व्यवस्था करना राजनीति का सामान्य धर्म है ।

आज राजनीति शब्द का प्रयोग विभिन्न अर्थों में किया जाता है । मुहल्ले की राजनीति से लेकर कार्यालय, महाविद्यालय, विश्वविद्यालय विधान सभा, लोक सभा तक यह व्याप्त है । इसप्रकार "राजनीति" शब्द का प्रयोग अत्यन्त व्यापक होने के कारण इसे परिभाषित करना कठिन है । प्राचीन भारत की शास्त्रीय दृष्टि के अनुसार "राजनीति" शब्द का निर्माण संस्कृत के "राज" और "नीति" - इन दो शब्दों के योग से हुआ है । "नीति" शब्द का अर्थ "ले जाना" है । इसके अनुसार "राजनीति" से तात्पर्य है - राज्य के "सम्यक् संचालन"[1] । "राजनीति" वस्तुतः अंग्रेज़ी शब्द "पोलिटिक्स" का समान अर्थवाला शब्द है । "नगर-राष्ट्र के अर्थ में प्रयुक्त यूनानी शब्द "पोलिस" से "पोलिटिक्स" शब्द का उद्भव माना जाता है ।"[2] प्राचीन यूनान में प्रत्येक नगर एक स्वतंत्र राज्य के रूप में संगठित होता था और पोलिटिक्स शब्द से उन नगर राज्यों से संबंधित शासन-विधि का बोध

---

1. वामन शिवराम आप्टे - संस्कृत-हिन्दी कोश - पृ. 852
2. अखिल विज्ञान कोश - भाग-4 - पृ. 501

होता था । लेकिन धीरे-धीरे राज्य का स्वरूप बदला और राजनीति भी राज्य के विस्तृत रूप से संबंधित विधा हो गई ।

आधुनिक युग में व्यवस्था के लक्ष्यों का चयन करना राजनीति का धर्म माना जाता है । लेकिन इसके अन्तर्गत ऐसी एक नीति का होना अनिवार्य है जो व्यष्टि और समष्टि की भलाई पर ज़ोर देती है । नीति-निर्माण के साथ ही साथ व्यष्टि और समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति करके, उसे सन्तुष्ट करनेवाले मूल्यों की सृष्टि भी राजनीति करती है । लेकिन उसे नैतिक मूल्यों को भी अपनाना चाहिए क्योंकि नैतिकता से रहित राजनीति समाज को बिगाड देगी । "आर्नेस्ट बार्कर" के शब्दों में "राजनीति नैतिकता का ही व्यापक रूप है ।"[1]

"राजनीति" को लोकमंगल की भावना से भी जुडकर रहना चाहिए क्योंकि समाज में होनेवाले संघर्षों तथा झगडों को निबटाना भी उसका कर्तव्य है । इतना ही नहीं, वह आपसी समझौता करती है और विवादों को शांत करती है । राजनीति हमेशा राज्य के विकास में सहायता देनेवाली व्यवस्था है । शासन-व्यवस्था से समाज का हरेक सदस्य यही उम्मीद करता है कि व्यवस्था समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति करें । समाज से अलग होकर राजनीति का अस्तित्व है ही नहीं । समाज के साथ सरोकार न रखनेवाली राजनीति अवश्य मानव मूल्यों का हनन करेगी ।

---

1. आर्नेस्ट बार्कर - द पोलिटिक्स आफ अरस्तू - पृ. 1, 120

यह कहना उचित है कि किसी भी समाज में मतभेदों को समाप्त करके, सुव्यवस्था की स्थापना करने में "राजनीति" का योगदान महत्वपूर्ण है । सैद्धांतिक रूप से व्यक्ति और समाज की भलाई तथा कल्याण से राजनीति का संबन्ध है । लेकिन आज व्यावहारिक स्तर पर राजनीति के अन्तर्गत सत्ता हथियाने का संघर्ष होता रहता है । इसका कारण राजनैतिक मूल्य विघटन है ।

राजनीति में मूल्य शब्द का अपना वैशिष्ट्य है । मानव-जीवन को सुचारु रूप से परिचालित करने के उद्देश्य से मूल्यों का निर्धारण हुआ है । समाज में शान्ति तथा सुव्यवस्था बनाये रखने के लिए जिन आचार-प्रणालियों का निर्धारण होता है उन्हें मूल्य कहना उचित है । मूल्यों के अभाव में राजनीति अपना अस्तित्व बनाये नहीं रख सकती । मूल्य ही राजनीति का निर्धारण और संचालन करते हैं । मनुष्य को हमेशा स्वतंत्र, सचेत तथा दायित्वपूर्ण बनाने वाले तत्वों को हम मूल्य कह सकते हैं । ये मूल्य मनुष्य को विवेक तथा संकल्प-शक्ति से युक्त इतिहास का निर्माता और अपनी नियति का अधिनायक बनाते हैं । सबसे श्रेष्ठ मूल्य तो "सामान्य जन की मुक्ति" है । लेकिन श्री धर्मवीर भारती की राय में "राजनीति की कई चिन्तन धाराओं ने बीसवीं शताब्दी के आरंभ में यह दावा पेश किया था कि वे मानव मुक्ति को ही लक्ष्य बनाकर चल रही है पर उन्होंने जिन व्यवस्थाओं को स्थापित किया उनको जनतंत्र का नाम तो अवश्य दिया, पर अधिकांश व्यवस्थाओं में तन्त्र औरों के ही हाथ में रहा "जन" तो ज्यों का - त्यों दास बना रहा ।"[1] जनता की स्वतंत्रता का तात्पर्य केवल भोजन तथा वस्त्र की प्राप्ति नहीं, बल्कि उनके मन में जो अन्धविश्वास, कुण्ठाएँ,

---

1. धर्मवीर भारती - मानव मूल्य और साहित्य - पृ. 74

अविवेक आदि है, जिसके कारण वह युग-युग से परतन्त्रता की जंजीर में पडी है । उनसे भी उन्हें मुक्त कराना है । लेकिन आधुनिक युग में इन मूल्यों के लिए कोई महत्व नहीं है ।

आज समाज में जो मूल्यच्युति आयी है, उसके परिणाम स्वरूप राजनैतिक मूल्य में भी बहुत परिवर्तन आया है । आधुनिक युग में धर्म, अर्थ तथा राजनीति के प्रति नयी धारणाएँ जन्म लेने के कारण नवीन मूल्यों का भी विकास हो गया है । युगीन परिस्थितियों के अनुसार हमारी आस्थायें तथा धारणायें भी बदल रही हैं । परिवर्तित धारणाओं एवं आस्थाओं के साथ जल्दी ही मूल्यों में भी परिवर्तन होता रहता है । आज राजनीति में विभिन्न वादों के बीच संघर्ष चल रहा है । आज का संसार राजनीति के भीषण आतंक से ग्रसित है ।

राजनीति में परिवर्तन आने के साथ साथ जीवन के अन्य क्षेत्र में भी परिवर्तन आता रहता है । उदाहरण के लिए जब मंत्रिमण्डल में हेरा-फेरी होती है तो बाज़ार दरों में भी उतार-चढ़ाव आने लगता है । इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि संपूर्ण राजनीति का प्रभाव संपूर्ण मानव मूल्यों पर पडता है ।

पहले राजनीति विशिष्ट वर्ग की चिन्ता एवं चिन्तन तक ही सीमित थी, लेकिन आज स्थिति बिलकुल बदल गयी है । इस

गणतंत्र युग में, राज्य संचालन में जनता का भी हाथ होने के कारण राजनीति जीवन-धर्म बन गई है, आज हर क्षेत्र में उसका महत्वपूर्ण स्थान है । स्वतंत्र-चेतना से युक्त आज के मानव ने राजनीति को अपने जीवन के धर्म के रूप में स्वीकार किया है । आज कोई भी व्यक्ति, संस्था या समाज राजनीति के प्रभाव से अपने आप को मुक्त नहीं कर सका । आधुनिक परिवेश में राजनीति की उपेक्षा करके जीना भी मुश्किल है । एक प्रकार से कहें तो अब राजनीति समाज का आधार बन गयी है ।

सामाजिक आधार से विच्छिन्न साहित्य या कला के अस्तित्व की कल्पना नहीं की जा सकती । अतः राजनीति और साहित्य के बीच घनिष्ठ अन्तर्सम्बंध होता है । सामाजिक परिस्थितियों का गहरा प्रभाव साहित्यकार पर पडता है । इसकी प्रतिक्रिया वह अपने साहित्य में व्यक्त करता है । यदि साहित्यकार किसी राजनैतिक दल से जुडा है या वह राजनीति को अपनी प्रगति का माध्यम बनाना चाहता है तो वह राजनीति का पक्ष ग्रहण करेगा । लेकिन इससे उसका साहित्य प्रचारवादी हो जायेगा । ऐसी स्थिति में साहित्यकार का अस्तित्व नष्ट हो जायेगा । सच्चा साहित्यकार मानवीय स्तर पर सोचेगा । उसकी प्रतिक्रिया भी जनसामान्य के हित में होगी । वस्तुतः साहित्यकार को संकीर्णता से उबरकर, अपने परिवेश से जुडकर रचना करनी चाहिए ।

हर युग में राजनैतिक स्थिति में परिवर्तन आता रहता है। इसलिए रचनाकार की प्रतिक्रिया का स्तर भी अलग होता है । जब शासक

निरंकुश होता है तो वह रचनाकार के अस्तित्व पर रोक लगा देता है । ऐसी स्थिति में समाज के प्रति साहित्यकार का दायित्व और भी बढ़ जाता है । निरंकुश शासकों का विरोध करके, साहित्यकार के रूप में अपने अस्तित्व की रक्षा करके, समाज के प्रति अपने दायित्व को निभाना सच्चे साहित्यकार का दायित्व है । प्रतिबद्ध साहित्यकार, अपनी रचनाओं द्वारा, भ्रष्ट राजनीति एवं अन्यायी शासकों के प्रति जनता को जागृत करने की कोशिश करता है ।

परतन्त्र भारत की राजनैतिक परिस्थितियाँ

यह बात तो सर्वविदित है कि अंग्रेज़ लोग भारत में कारोबार करने के लिए आये, बाद में वे हमारे मालिक हो गये । जब शासन पूर्ण रूप से ईस्ट इन्डिया कंपनी के हाथ में आया तो वे भारतीय जनता पर अपनी निरंकुश नीतियाँ चलाने लगे । इस निरंकुश शासन के प्रति जनता की प्रतिक्रिया अठारह सौ सत्तावन (1857) की 'सिपाई म्यूटिनी' के रूप में प्रकट हुई । लेकिन इस संग्राम में भारतीय जनता पूर्ण रूप से पराजित हुई । इसके बाद अंग्रेज़ शासकों की नीति और भी कठोर बन गई । इन दुर्नीतियों ने भारतीय जनता को अधिक संगठित होने की प्रेरणा दी है । तिलक, गोखले, लाला लाजपतराय आदि के नेतृत्व में भारत की मुक्ति के लिए आन्दोलन आरंभ किया । अठारह सौ पच्यासी (1885) में स्थापित भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस नामक संस्था स्वतंत्रता-संग्राम का नेतृत्व करने लगी । अंग्रेज़ शासक भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन को शिथिल करने की नयी नयी तरकीबें ढूँढते रहे । हिन्दु और मुसलमानों को दो भागों में

---

1. मन्मथनाथ गुप्त - कांग्रेस के सौ वर्ष-संघर्ष और सफलता का इतिहास -

विभाजित करके उनके मन में साम्प्रदायिक वैमनस्य पैदा करने की उनकी कोशिश इसका स्पष्ट प्रमाण है । सोलह अक्तूबर 1905[1] ईसवीं में बंगाल का विभाजन भी अंग्रेज़ों ने इसी उद्देश्य से किया । बंगाल विभाजन के साथ शक्तिशाली जन आन्दोलन की शुरुआत हुई ।

श्री सुरेन्द्रनाथ बानर्जी ने अपने भाषण में बंग-भंग के कारण बंगाल में जो अत्याचार हो रहे थे, उनका उल्लेख किया । सभा, जुलूस, भजन-पार्टियों पर रोक, वन्देमातरम् गाने के लिए मारपीट, बच्चों को सजाएँ, गुरखों का अत्याचार आदि विषयों का उल्लेख किया । बंग-भंग के कारण बंगाल के छात्र-समाज ने "गश्ती चिट्ठी विरोधी सभा" नाम से अपना संगठन कायम किया ।[2]

दादा भाई नवरोजी ने प्रथम बार (1906 ई. में) कलकत्ता कांग्रेस में सभापति पद से भाषण देते हुए "स्वराज्य" शब्द का प्रयोग करके जनता को राष्ट्रीय सन्देश देने की कोशिश की । बंगाल में सब कहीं "स्वदेशी आन्दोलन" एवं "बन्देमातरम्" की धूम मच गई । "लाल, बाल और पाल के नेतृत्व में सर्वत्र "हुज्जते बंगला" की ध्वनि बाल-वृद्ध, नर-नारी सभी के कंठों से निःसृत होने लगी ।"[3] इसके बाद ब्रिटिश शासन का पूर्ण बहिष्कार किया गया । भारतीयों ने विदेश में रहनेवाले भारतीयों के

---

1. मन्मथनाथ गुप्त - कांग्रेस के सौ वर्ष-संघर्ष और सफलता का इतिहास -पृ. 72
2. मन्मथनाथ गुप्त - कांग्रेस के सौ वर्ष-संघर्ष और सफलता का इतिहास-पृ. 72
3. अभ्युदय (साप्ताहिक), जनवरी 11-1937 - पृ. 14

मन में भी स्वतंत्रता की भावना को जागृत करने की कोशिश की । 1905 में, लन्दन में "इन्डिया होमरूल सोसायिटी" की स्थापना भी इसी उद्देश्य से हुई थी । कांग्रेस का विभाजन, स्वराज्य के लिए घोषणा, मुस्लीम लीग की स्थापना के साथ क्रांतिकारी आन्दोलन का आरंभ आदि इसी समय हुए ।

इसी समय स्वतंत्रता-आन्दोलन के क्षेत्र में गान्धीजी ने कदम रखा । दक्षिणी अफ्रीका से ख्याति प्राप्त कर भारत लौट आने के बाद वे अहमदबाद में "सबरमती आश्रम" में रहकर भारत की मुक्ति के बारे में सोचने लगे ।

आगे गान्धीजी के नेतृत्व में जनांदोलन ज़ोर पकडने लगा, तो अंग्रेज़ सरकार ने घबराकर "रौलट आक्ट" पेश किया । इस आक्ट के अनुसार किसी भी व्यक्ति को राजद्रोह के अभियोग में सज़ा दी सकती थी । इस आक्ट का तीव्र विरोध करने के लिए तेरह एप्रैल को पंजाब के अमृतसर के जालियन वालाबाग में एक विशाल सभा का आयोजन हुआ । निहत्थे, शांत एवं अहिंसाप्रिय भारतीयों की विशाल सभा पर अंग्रेज़ सैनिकों की गोलियों की वर्षा हुई । इस घटना से भारत की सारी जनता क्षुब्ध हो गयी । "सरकारी हिसाब से भी 379 आदमी मारे गये, पर वास्तव में लगभग 1000 आदमी मारे गये थे । कई हज़ार जख्मी होकर रात भर वहीं पडे रहे । इन्हें किसी प्रकार की मदद न दी गयी ।"[1]

---

1. मन्मथनाथ गुप्त - कांग्रेस के सौ वर्ष - संघर्ष और सफलता का इतिहास - पृ. 97

इस हत्याकाण्ड में जितने लोग घायल हुए, उन्हें कोई उपचार या पानी तक नहीं मिला । जनता की क्रोधाग्नि को रोकने के लिए पंजाब में मार्शल-ला लागू किया गया । इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप अनेक स्थानों पर अंग्रेज़ों की हत्या की गयी, सरकारी बैंकों को लूट गया । इन सब कारणों से गान्धीजी बहुत दुःखी हो गये और उन्होंने असहयोग आन्दोलन की शुरुआत की । असहयोग कार्यक्रम की घोषणा इस प्रकार थी - 'सरकारी उपाधियों और अवैतनिक पदों को छोड दिया जाय तथा म्युनिसिपल बोर्डों तथा अन्य स्थानिक संस्थाओं में जो लोग मनोनीत किये गये हैं, वे अपने पदों से त्याग पत्र दे दें; सरकारी दरबारों, स्वागत समारोहों तथा सरकारी अफ़सरों द्वारा आयोजित अथवा उनके सम्मान में किये गये सरकारी अथवा अर्द्ध-सरकारी उत्सवों में भाग लेने से इनकार कर दिया जाय ; सरकार से सहायता प्राप्त अथवा सरकार द्वारा नियंत्रित स्कूलों तथा कालेजों से बालकों को क्रमिक रीति से निकाल लिया जाय, और ऐसे स्कूलों तथा कालेजों के स्थान पर विविध प्रान्तों में राष्ट्रीय स्कूलों की स्थापना की जाय; ब्रिटिश अदालतों का वकीलों और मुवक्किलों द्वारा क्रमिक रीति से बहिष्कार किया जाय, आपसी झगडों को तय करने के लिए पंचायती अदालतों की स्थापना हों ; फौज के लोग और क्लर्की तथा मज़दूरी करनेवाले लोग मेसोपोटामिया में सेवा के लिए भर्ती होने से इनकार कर दें; नई कौंसिलों के लिए खडे हुए उम्मीदवार अपना नाम उम्मीदवारी से वापस ले लें और यदि कांग्रेस की सलाह के विरुद्ध कोई उम्मीदवार चुनाव के लिए खडा हो तो मतदाता उसे वोट देने से इनकार कर दें ; विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार किया जाय । इसे व्यावहारिक बनाने के लिए लोगों को सलाह दी गई कि वे बडे पैमाने पर स्वदेशी वस्त्रों को अपनायें और हरेक घर में हाथ की कताई को फिर से शुरू करके बडे पैमाने पर हाथ के बुने वस्त्रों के उत्पादन को तत्काल बढाया जाय ।"

समाचार-पत्रों में असहयोग संबंधी प्रस्ताव के प्रकाशन का सबसे पहला असर नई कौंसिलों के चुनाव पर पड़ा, जो शीघ्र ही होनेवाले थे । कौंसिलों के प्रति देशवासियों का दृष्टिकोण एकदम बदल गया । सभी राष्ट्रीयतावादी उम्मीदवारों ने, जिन्होंने अपनी उम्मीदवारी की घोषणा कर दी थी और जो अपना चुनाव प्रचार कर रहे थे, अपने को चुनाव के मैदान से हटा लिया । लगभग 80 प्रतिशत मतदाताओं ने मतदान में भाग नहीं लिया और कई स्थानों पर मतपत्र डालने के बक्से एकदम खाली रहे ।[1] अनेक देशभक्त लोगों ने सरकारी उपाधियों तथा नौकरियों को त्याग दिया । अनेक विद्यार्थी भी कालेज तथा स्कूल छोड़कर बाहर आ गये । इन सबके बावजूद देश में अनेक नये राष्ट्रीय शिक्षणालय की स्थापना हुई । नेशनल कालेज लाहौर, बंगाल राष्ट्रीय विद्यालय आदि इनमें प्रमुख थे । अनेक स्थानों पर विदेशी माल की होलियाँ जलाई गईं । विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार हुआ । इस प्रकार देश में स्वदेशी माल और चरखा-कताई आदि का अधिक प्रचार हो गया । इन सब के नेता महात्मागाँधी थे ।

इसी समय उन्होंने गुजरात में बारदोली में "करबंदी" आन्दोलन का आयोजन किया । "5 फरवरी को संयुक्त प्रांत के गोरखपुर जिले में चौरीचौरा ग्राम में राष्ट्रीय स्वयंसेवकों की देखरेख में एक जुलूस निकाला जा रहा था । जिस समय जुलूस सड़क पर से गुज़र रहा था, जुलूस के पीछे भाग में लोगों ने शिकायत की कि पुलिस के कुछ सिपाहियों ने उनको गालियाँ दी हैं । इस पर भीड़ उलट पड़ी । सिपाहियों ने गोली चला दी । उनके पास थोड़े से कारतूस थे और वे चुक गये । भीड़ ने तब थाने में

---

1. राम गोपाल - भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास - पृ. 311

आग लगा दी । थाने के अन्दर अपने को बंद कर लेनेवाले सिपाहियों को तब अपनी जान बचाने के लिए बाहर आना पडा और तब उनके टुकडे-टुकडे कर दिये गये और उनकी लाश के लोथडों को आग में झोंक दिया गया ।"[1]

चौरीचौरा की इस अप्रत्याशित घटना के कारण नाराज़ होकर गान्धीजी ने आन्दोलन को स्थगित कर दिया क्योंकि वे पूर्ण रूप से अहिंसावादी थे । सरकार ने गान्धीजी को छः वर्ष के जेलवास की सज़ा दी । देश की सारी जनता नर-नारी, मज़दूर वर्ग, अशिक्षित वर्ग तथा मुसलमान ने इस आन्दोलन में भाग लिया । इस आन्दोलन का परिणाम यह हुआ कि इससे संपूर्ण भारत में राजनीतिक चेतना फैल गयी ।

जब राष्ट्रीय जन-जागरण को कुचलने में ब्रिटिश सरकार असफल हो गयी तो राजनीतिक तूफान को शान्त करने के लिए साइमन कमीशन की नियुक्ति की । "उस दिन सारे देश में हड़ताल की गयी । जहाँ-जहाँ कमीशन गया, वहाँ-वहाँ उसका स्वागत "साइमन लौट जाओ" के नारों से किया गया । मद्रास की जस्टिस पार्टी तथा कुछ मुस्लिम संस्थाओं के अतिरिक्त सबने इसका बायकाट किया । जिस समय यह कमीशन लखनऊ पहुँचा, तो उसके बायकाट के संबंध में पंडित जवाहरलाल तथा गोविन्द वल्लभ पन्त को भी चोटें आयीं । पटना में कमीशन का बायकाट हुआ । सरकार कुछ भाडे के आदमियों को गांवों से फुसलाकर ले आई थी, पर वे लोग आते ही प्रदर्शनकारियों में शामिल हो गए । इसी प्रकार सब स्थानों पर हुआ । लाहौर में

---

1. रामगोपाल - भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास - पृ. 323

30 अक्टूबर को जो कुछ हुआ वह ऐतिहासिक इसलिए हो गया कि उसके साथ लाला लाजपतराय की मृत्यु तथा भगतसिंह का नाम जुड गया । लाहौर में लालाजी के नेतृत्व में कमीशन का बायकाट हुआ । लालाजी पर पुलिस की लाठी पडी । इसी चोट के बाद उन्होंने जो बिस्तर पकडा तो फिर वे उठे नहीं और 17 नवम्बर को वीरगति प्राप्त कर गए । बाद को क्रांतिकारी दल ने इसका बदला लेने के लिए भगतसिंह, चन्द्रशेखर, आज़ाद तथा राजगुरू को भेजकर लाहौर के पुलिस सुपरिन्टेंडेंट मिस्टर सैंडर्स को 15 दिसम्बर को चार बजे गोलियों से मरवा दिया । क्रांतिकारी दल ने अपने तरीके से साइमन कमीशन के बहिष्कार की चेष्टा की । काशी से मनमोहन गुप्त, मार्कंडेय तथा हरेन्द्र बहुत शक्तिशाली बम लेकर इसलिए रवाना हुए थे कि साइमन कमीशन को उड़ा दें परन्तु चलती गाडी में बम फट गया । मार्कंडेय स्वयं शहीद हो गए, और बाकी दो व्यक्ति मनमोहन और हरेन्द्र को गिरफ्तार कर सज़ा दी गई ।[1]

1929 ई[2] में जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में कांग्रेस ने पूर्णस्वराज्य की माँग करने का निश्चय किया । उन्होंने रावी के तट पर अपने लक्ष्य (पूर्ण स्वराज्य) की घोषणा की । उन्होंने प्रतिज्ञा-पत्र पढा और तिरंगा झंडा फहराया । 2 जनवरी 1930 ई में नई कार्य समिति की बैठक हुई और देश भर में पूर्ण-स्वराज्य-दिवस मनाए जाने का निश्चय किया । इसके लिए 26 जनवरी 1930 ई. का दिन, निश्चित किया । नागरिकों

---

1. मन्मथनाथ गुप्त - कांग्रेस के सौ वर्ष - संघर्ष और सफलता का इतिहास - पृ. 112
2. मन्मथनाथ गुप्त - कांग्रेस के सौ वर्ष - संघर्ष और सफलता का इतिहास -

के "मूल अधिकार" एवं राष्ट्रीय-आर्थिक-कार्यक्रम का निर्णय किया गया । इस दिन सार्वजनिक सभाओं का आयोजन हुआ । "26 जनवरी 1930 को सारे भारत वर्ष में स्वतंत्रता दिवस जिस जोश के साथ मनाया गया, उससे यह स्पष्ट हो गया कि देश में कितना प्रबल जोश है । 25 जनवरी को वायसराय ने धारासभा के सम्मुख जो भाषण दिया था उससे यह साफ हो गया था कि सरकार कुछ लेना-देना नहीं चाहती । इस कारण स्वतंत्रता दिवस और भी ज़ोरों से मनाया गया ।"[1]

1930 ई में महात्मागाँधी ने "सत्याग्रह आन्दोलन" का समारंभ किया । ब्रिटिश सरकार ने नमक जैसी महत्वपूर्ण एवं सर्वसुलभ-वस्तु को भी "कर" के बोझ से दुर्लभ कर दिया । इस कानून के कारण भारतीय क्षुब्ध थे । इस कानून को तोड़ने के लिए गांधीजी ने समाचार पत्रों को यह वक्तव्य दिया "नमक कानून को अब विधिवत् भंग कर दिया गया है । अब हर कोई नमक-कानून के अंतर्गत सजा भुगतने का खतरा मोल लेकर जहाँ चाहे और जब सुविधा देखे, नमक बना सकता है । मेरी सलाह है कि कार्यकर्त्ता सर्वत्र नमक बनावें । जहाँ पर कार्यकर्त्ताओं को शुद्ध नमक बनाना आता हो, वे शुद्ध नमक बनावें और ग्रामीणों को उसकी शिक्षा दें । ग्रामीणों को स्पष्ट रूप से बता देना चाहिए कि यह कानून की खुली अवज्ञा है और इसमें चोरी छिपे का कोई कार्य नहीं है ।"[2]

---

1. मन्मथनाथ गुप्त - कांग्रेस के सौ वर्ष - संघर्ष और सफलता का इतिहास - पृ. 118

2. रामगोपाल - भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास - पृ. 357

यद्यपि सत्याग्रह आन्दोलन का प्रमुख भाग नमक-कानून तोडना था फिर भी इसके साथ कांग्रेस ने यह आदेश भी दिया कि विदेशी वस्त्र की दूकानों और शराब की भट्टियों पर धरना दिया जाये और किसान, सरकार को मालगुज़ारी अदा न करें क्योंकि इस मालगुज़ारी ने भारतीय किसान की रीढ़ तोड दी थी । यह आन्दोलन देश भर में फैल गया जिसके कारण अनेक देश भक्त कैद हो गये । सरकार ने इन कैदियों पर मारपीट भी की । महिलाओं ने भी इसमें भाग लिया । डॉ. पट्टाभि सीता रामय्या की राय में "पुलिस प्रदर्शन को रोकने का निश्चय कर चुकी थी । स्त्रियों ने जुलूसवालों को पानी पिलाने के लिए भिन्न-भिन्न स्थानों पर पानी के बडे-बडे बर्तन रख छोडे थे । पुलिस ने पहले तो इन बर्तनों को ही तोडा । फिर स्त्रियों को बलपूर्वक तितर-बितर कर दिया । यह भी कहा जाता है कि जब स्त्रियाँ गिर गयीं तो पुलिसवाले उनके सीनों को बूटों से कुचलते हुए चले गये ।"[1]

इन आन्दोलनों के परिणाम स्वरूप साधारण जनता में अन्याय का विरोध करने का साहस आया और उनके मन में स्वराज्य की चाह भी जागृत हुई । इस जागृति एवं साहस के कारण ब्रिटिश शासन का भारत में स्थिर रहना असंभव हो गया । इसी समय गान्धीजी ने देश में खादी-प्रचार, अछूतोद्धार, हिन्दु-मुस्लिम एकता आदि की कोशिश की जिसने स्वराज्य प्राप्ति के लिए विशेष मदद दी ।

---

1. डॉ. पट्टाभि सीतारामय्या - कांग्रेस का इतिहास, प्रथम भाग - पृ. 319

किसी भी मूल्य पर ब्रिटिश शासक भारत को खोना नहीं चाहते थे । इसलिए जनता को शांत करने के लिए 1935 ई में उन्होंने "गवर्नमेन्ट ऑफ इन्डिया ऐक्ट"[1] पास किया । "इस ऐक्ट में, पार्लियामेन्ट की प्रवर समिति द्वारा प्रशंसित सिद्धांत के अनुसार, "निर्वाचित विधान-मंडलों के प्रति उत्तरदायी मंत्रियों" की व्यवस्था की गई थी । यद्यपि उसमें गवर्नरों को सर्वशक्तिशाली बनानेवाली धारायें थीं तथापि उसके द्वारा व्यावहारिक रूप में प्रांतीय स्वशासन की स्थापना की गयी थी ।[2] इस ऐक्ट के अनुसार शासन में जो सुधार किये गये थे, उससे जनता संतुष्ट नहीं हुई । "कांग्रेस ने ऐक्ट को अस्वीकार कर दिया, क्योंकि पूर्ण स्वाधीनता से कम कोई चीज़ उसे स्वीकार्य नहीं थी ।[3] उसने "संविधान को भंग करने के लिए" चुनाव लडने का और इस प्रकार अपनी शक्ति का परिचय दिलाने का निश्चय किया । फरवरी 1937 ई. में जो आम चुनाव कराए गए उसमें अनेक दलों ने भाग लिया । "836 सामान्य सीटों में से कांग्रेस ने 715 सीटों पर कब्जा कर लिया । कांग्रेस के पक्ष में डाला गया प्रत्येक वोट अंग्रेज़ी राज के विरुद्ध वोट था ।"[4] पंजाब तथा बंगाल में मुस्लिम लीग का बहुमत था ।

1939 ई में[5] द्वितीय महायुद्ध शुरू हुआ । इसलिए कांग्रेसी सरकारों ने त्यागपत्र दे दिये । उन्हें शासन के लिए बहुत कम समय ही मिला था, फिर भी कानून, शिक्षा और समाज-सुधार के क्षेत्र में उन्होंने सराहनीय

---

1. मन्मथनाथ गुप्त - कांग्रेस के सौ वर्ष-संघर्ष और सफलता का इतिहास-पृ. 132
2. रामगोपाल -भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास - पृ. 404
3.
4.
5. मन्मथनाथ गुप्त-कांग्रेस के सौ वर्ष-संघर्ष और सफलता का इतिहास -पृ. 139

कार्य किये । जब देश भर में द्वितीय महायुद्ध की आग भड़क उठी, उस समय जर्मनी, इटली, जापान जैसे फासिस्ट देश एक हो गये और ब्रिटेन, फ्रांस तथा रूस मित्र हो गये । ब्रिटिश सरकार ने भारत से युद्ध के लिए सहायता माँगी तो कांग्रेस ने युद्ध का स्पष्टीकरण एवं स्वेच्छापूर्ण शासन-प्रबन्ध की माँग की । लेकिन सरकार ने इन माँगों को स्वीकार नहीं किया और भारतीयों ने उनकी सहायता भी नहीं की ।

जब द्वितीय महायुद्ध में ब्रिटन को भारत की सहायता न मिली, तो ब्रिटिश सरकार बहुत घबरा गयी । स्वतंत्रता संघर्ष से भारतीय जनता का ध्यान हटाने के लिए "क्रिप्स योजना" का नाटक रचा गया । "क्रिप्स" ने भी भारत के सुधार के लिए कुछ प्रस्ताव रखे । "क्रिप्स प्रस्तावों का आशय यह था कि भारतवर्ष एक यूनियन या संयुक्त राष्ट्र बने । प्रस्ताव में कहा गया था कि युद्ध खत्म होने के बाद ही भारतवर्ष को जिम्मेदार सरकार दी जायेगी । योजना में लीग को भी, जिसने अब तक पाकिस्तान को अपना उद्देश्य घोषित कर दिया था, खुश करने की कोशिश की गई थी । इसमें प्रान्तों तथा रियासतों को यह स्वतंत्रता दी गई थी कि वे संयुक्त राष्ट्र में जब चाहे तभी शामिल हों ।"[1] पाकिस्तान की माँग को बढावा देने के कारण, क्रिप्स प्रस्ताव को भी कांग्रेस ने ठुकरा दिया ।[2] 8 अगस्त 1942 ई. को बंबई में अखिल भारतीय कांग्रेस ने "भारत छोडो" प्रस्ताव पास किया ।

---

1. मन्मथनाथ गुप्त - कांग्रेस के सौ वर्ष - संघर्ष और सफलता का इतिहास - पृ. 148
2. मन्मथनाथ गुप्त - कांग्रेस के सौ वर्ष - संघर्ष और सफलता का इतिहास - पृ. 149-151

गोली खाने और तोपों का सामना करने को जनता तैयार थी क्योंकि वे जानती थीं कि वे आग से ही खेल रही हैं । 9 अगस्त को सरकार ने इस आन्दोलन को अवैध घोषित किया । महात्मा गान्धी और कांग्रेस के सभी सदस्य गिरफ्तार हो गये । इसके बाद राष्ट्रीय झण्डे को सलामी देनेवाले स्वयं सेवकों की रैली पर भी सरकार ने आक्रमण किया । राष्ट्रीय झंडे को पुलिस ने गिरा दिया और बहुत स्वयंसेवक बन्दी हो गये । नेताओं को गिरफ्तार करने से देश की जनता क्षुब्ध हो गयी, वे सारे देश में हड़ताल करने लगीं और सरकार के विरुद्ध प्रदर्शन करने लगीं । क्षुभित युवक रेल की पटरियाँ उखाड़ना, सरकारी इमारतों को जलाना, पुलिस पर आक्रमण करना आदि नाशकारी कार्य करने लगे । सरकार की ओर से भी सब कहीं गोलियाँ, गिरफ्तारी, मारपीट एवं स्त्रियों का अपमान हो गया । "तार काटने और सार्वजनिक इमारतों को क्षति पहुँचाने के अपराध में गाँवों और शहरों में सामूहिक जुर्माने किये गए । कुल मिलाकर एक करोड रूपये से भी अधिक जुर्माना किया गया । सभी अधिकारियों और सुरक्षा-कोर के सदस्यों को भारत रक्षा कानून के अन्तर्गत बिना वारन्ट के गिरफ्तार करने का अधिकार दे दिया गया था ।[1] स्वाधीनता आन्दोलन की सबसे बड़ी क्रांति थी यह । इस भीषण तूफान को देखकर अंग्रेज़ों को भी यही लगा कि भारत को स्वाधीन करने में ही लाभ है ।

1946 ई. में जो चुनाव हुए उसमें जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में सरकार बनी ।[2] मुस्लीम लीग ने उसमें भाग नहीं लिया । लेकिन वे साम्प्रदायिक दंगों से उस सरकार को असफल बनाने की कोशिश करते रहे ।

---

1. डॉ. पट्टाभि सीतारामय्या कांग्रेस का इतिहास -दूसरा खण्ड -पृ. 443
2. मन्मथनाथ गुप्त -कांग्रेस के सौ वर्ष-संघर्ष और सफलता का इतिहास - पृ. 166

कुछ युरोपीय अधिकारी तथा कुछ नरेशों ने भी इसमें उनकी मदद की । अंत में और कोई उपाय न होने के कारण, राष्ट्र तथा जनता की सुरक्षा को ध्यान में रखकर, काँग्रेस को पाकिस्तान की माँग स्वीकार करनी पडी । इसलिए 3 जून 1947 ई[1] को सरकार ने मुस्लिम बहुल क्षेत्र पंजाब, बंगाल तथा इनके सीमा प्रान्त, सिन्ध तथा आसाम का कुछ भाग मिलाकर पाकिस्तान के नाम से एक स्वतंत्र राज्य की घोषणा की । और शेष भारत भी स्वतंत्र राज्य कहलाया । 15 अगस्त 1947 ई. को दोनों राज्य पूर्ण स्वतंत्र कहलाये गये ।[2]

प्राक् स्वतंत्रता कालीन नाटकों में अभिव्यक्त राजनैतिक चेतना

परतन्त्र भारत की राजनैतिक परिस्थितियाँ उस समय रचे गये नाटकों में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं । प्राक्स्वतंत्रता कालीन नाटकों को तीन श्रेणियों में विभाजित कर सकते हैं । भारतेन्दु युगीन नाटक (1850 से 1900 तक), प्रसादयुगीन नाटक (1921 से 1935 तक) और प्रसादोत्तर युगीन नाटक (1935 से 1947 तक) ।

भारतेन्दुयुगीन नाटक (1850 से 1900 तक)

भारतेन्दु युग साहित्य, कला एवं संस्कृति के नवोत्थान का युग है । राष्ट्रीय जागरण तथा नयी सांस्कृतिक चेतना का उन्मेष इस

---

1. मन्मथनाथ गुप्त - काँग्रेस के सौ वर्ष-संघर्ष और सफलता का इतिहास-पृ. 170
2. Malavala Manorama Year Book- 1991 P.490.

युग में हुआ । इस काल में ही, साधारण जनता के मन में राष्ट्रीय भावना का उदय हुआ । इसलिए इस समय प्रचार का अत्यन्त उपयोगी माध्यम था नाटक । भारतेन्दु युगीन नाटककारों ने ऐतिहासिक एवं पौराणिक कथानकों के माध्यम से तत्कालीन सामाजिक तथा राजनैतिक परिस्थितियों का चित्रण किया । राजनैतिक कुरीतियों पर तीखा व्यंग्य भी किया । उन नाटककारों के सभी नाटक लोकमंगल की भावना से भी प्रेरित हैं । ऐतिहासिक नाटकों के कथानक प्राय: राजपूत युग के इतिहास से चुने गये थे । इन नाटकों का प्रमुख विषय देशप्रेम की भावना थी । नाटकों का मुख्य-उद्देश्य समाज-सुधार और सामाजिक समस्याओं के प्रति जनता को जागृत करना था । इसलिए ही इन नाटकों के कथानक भी विविध थे । इस युग के सबसे प्रमुख नाटककार थे "भारतेन्दु हरिश्चन्द्र" ।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

श्री भारतेन्दु ने ही आधुनिक नाटक को युगीन भावबोध एवं नवीन नाट्यशैली से अनुप्राणित करने का सफल प्रयास किया था । इसके बारे में आचार्य रामचन्द्र शुक्लजी का कहना है - "भारतेन्दु से पूर्व यद्यपि कुछ नाटकों का उल्लेख मिलता है किन्तु उनमें नाटकत्व का प्राय: अभाव लक्षित होता है ।"[1] "भारतदुर्दशा", "भारत जननी," नील देवी," अन्धेर नगरी, विषस्य विषमौषधम्" आदि उनके प्रमुख राजनैतिक नाटक हैं । इन नाटकों में उन्होंने क्रूर राजाओं की दुर्नीतियों, दुराचारी सामन्तों की राजकीय अव्यवस्था, भ्रष्ट न्याय व्यवस्था, अंग्रेज़ों की शोषण नीति के कारण भारत की

---

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल - हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ. 432

बिगड़ी हुई स्थिति एवं भारतीयों की हीन-अवस्था तथा पराधीनता का सच्चा चित्र उभारा है ।

देश प्रेम से अभिभूत होकर भारतेन्दु जी ने जिन नाटकों की रचना की उनमें प्रमुख हैं "भारत दुर्दशा" एवं "भारत जननी" । इन नाटकों के द्वारा उन्होंने देश में राष्ट्रीय चेतना को एवं सोये हुए समाज को जागृत करने की कोशिश की । "भारत दुर्दशा" में नाटककार ने भारत की दुर्दशा के कारणों को खोजने का प्रयास किया है । इसके पात्र, उनका चरित्र, कथा आदि सब प्रतीकात्मक है । आशा, निर्लज्जता, सत्यानाश, रोग, आलस्य, मदिरा, अन्धकार, भारत-भाग्य, भारत दुर्दैव आदि प्रतीकात्मक पात्रों की सृष्टि द्वारा नाटककार ने भारत की तत्कालीन स्थिति पर प्रकाश डाला है । डॉ. रामकुमार गुप्त का विचार है - "भारत दुर्दशा" में अतीत की गौरवपूर्ण झाँकी है, अश्रुभरा वर्तमान है और भविष्य निर्माण की भव्य प्रेरणा है ।"[1]

नाटककार की स्पष्ट धारणा तो यही है कि आपसी फूट, आलस्य तथा विदेशी गुलामी और उसके कारण जीवन में उत्पन्न विकृतियाँ तथा आर्थिक शोषण ही भारत की दुर्दशा के मूल कारण हैं । तत्कालीन भारत की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक दुर्दशा ही समग्र रूप से नाटक की कथावस्तु है ।

---

1. डॉ. रामकुमार गुप्त - आधुनिक हिन्दी नाटक और नाट्यकार - पृ. 4

भारत की दुर्दशा को नाटककार ने जिस रूप में देखा था, उसे ही उन्होंने इसमें उभारा है । देश में अविद्या, कुमति, फूट, आलस्य आदि की प्रमुखता है । धर्म भी देश की बुरी हालत की प्रेरक शक्ति बनकर काम कर रहा है । भारतीयों ने अंग्रेज़ों से कोई गुण नहीं लिया, बल्कि अवगुणों को लिया । अंग्रेज़ राज्य की स्वार्थ नीति के कारण देश का सत्यानाश हो रहा है । देश का सोना बहकर समुद्र पार पहुँच रहा है और इसके ऊपर राजकरों का बोझ भी जनता पर पडा हुआ है । नाटक का आरंभ ही भारत की करुण-अवस्था के चित्रण से होता है -

> "रोवहु सब मिलके आवहु भारत भाई ।
> हा हा ! भारत दुर्दशा न देखी जाय ।।"[1]

इस नाटक में नाटककार की उन्मुक्त राष्ट्रीय भावना के यथार्थ स्वरूप के दर्शन कर सकते हैं । डॉ. भानुदेव शुक्ल की राय बिलकुल सही लगती है - "राष्ट्रीय दुर्दशा एवं अधःपतन के कारणों की परीक्षा करते हुए नाटककार ने समसामयिक राष्ट्रीय अवनति के वास्तविक एवं शोचनीय स्वरूप को प्रस्तुत कर दिया है ।"[2] जनता के मन में अपने स्वत्व का बोध और आत्म-बोध पैदा करने की चाह नाटककार के मन में है ।

राष्ट्रीय-जागरण को लक्ष्य करके लिखा गया एक उत्तम नाटक है "भारत जननी" जो एक ही दृश्यवाला नाटक है । इसमें भी भारत

---

1. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र - भारत दुर्दशा - पृ.35
2. डॉ. भानुदेव शुक्ल - भारतेन्दु के नाटक - पृ. 53

की तत्कालीन परिस्थितियों को आधार बनाया है । अंग्रेज़ों की अधीनता में पड़े भारत की दयनीय स्थिति का बड़ा ही मार्मिक चित्रण इस प्रतीकात्मक नाटक में हुआ है । इसमें जब भारत जननी अपनी सोयी हुई संतानों को जगाने की कोशिश करती है तो बड़ी कठिनाई से वे उठती हैं । लेकिन वे उठते ही क्षुधा निवारण के लिए भोजन माँगती हैं । किन्तु अपनी संतानों की भूख मिटाने के लिए उसके पास कुछ भी नहीं है । इसमें मातृभूमि एवं भारत-संतान की बुरी हालत का चित्रण करके भारत वासियों में चेतना की चिनगारी को सुलगाना ही नाटककार का उद्देश्य है । नाटककार की मान्यता तो यही है कि किसी की सहानुभूति से देश का उद्धार नहीं हो सकता । देश के उद्धार के लिए देशवासियों को धैर्य धारण करके अपने पौरुष को पुनः सजग करना है और अपने खोए हुए आत्म गौरव को प्राप्तकर उत्थान के मार्ग पर आगे बढ़ना चाहिए ।

इस नाटक के द्वारा नाटककार ने सोये हुए भारतीय जन को सजग करने की कोशिश की है । भारत के प्राचीन वैभव का स्मरण कराते हुए वर्तमान हीनावस्था को भी स्पष्ट किया है । साथ ही साथ महारानी विक्टोरिया के सुशासन में, उन्नति के अवसरों का भी उल्लेख किया है । नाटककार का विचार है कि सरलहृदया, आर्द्रचित्ता, प्रजारंजनकारिणी एवं दयाशीला आर्यस्वामिनी राजराजेश्वरी महारानी विक्टोरिया के चरण कमलों में अपने दुःख का निवेदन करने से वे भारतीयों की ओर कृपा-कटाक्ष से देखेंगी ।

ऐतिहासिक कथानक पर आधारित, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का एक घटना-प्रधान गीति-रूपक है "नीलदेवी" । इस नाटक का आधार

पंजाब के राजा सूर्यदेव और अमीर अब्दुशशरीफ खां सूर की कथा है । रानी नीलदेवी का नर्तकी के वेश में यवन सरदार से प्रतिशोध लेने का जो प्रसंग इसमें वार्णित है, वह काल्पनिक है । नीलदेवी के साहसी व्यक्तित्व के चित्रण द्वारा नाटककार यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि नारी केवल भोग्य ही नहीं है प्रत्युत् अपने चरित्र एवं साहस द्वारा वीरांगना बनकर स्वदेश एवं समाज के गौरव की रक्षा करने की सामर्थ्य भी रखती है । इसमें मुसलमान शासकों की विलासप्रियता की पृष्ठभूमि में हिन्दु नारी के साहसी एवं महान आदर्श की स्थापना करके नाटककार ने धर्मनीति एवं राजनीति का सुन्दर समन्वय किया है । रानी नीलदेवी राजनीति के दाँव पेंचों से परिचित होने के कारण, अपने पति को दुष्टों से सावधान रहने का उपदेश देती है । उसका विचार है कि युद्ध में धर्म और राजनीति के समन्वय की आवश्यकता है । नाटककार ने अब्दुशशरीफ खाँ को एक नीच, कपटी एवं व्यभिचारी पात्र के रूप में चित्रित किया है जो अपने शत्रु को सोते समय कैद कर लेता है, इस प्रकार अपनी कूटनीति का परिचय देता है ।

भारतेन्दुजी का एक हास्य-व्यंग्य प्रधान प्रहसन है "अन्धेर नगरी" । इसे "भारत दुर्दशा" की अगली कड़ी माननी चाहिए । यह मुख्यतः अंग्रेज़ी राज्य-व्यवस्था के प्रति गहरा व्यंग्य है । लेकिन अंग्रेज़ों के प्रकोप से बचने के लिए प्रचारित किया गया कि यह बिहार के राजा के सुधार के लिए लिखा गया है । इस नाटक में तत्कालीन राजा-नवाब वर्ग ही राजा के रूप में प्रधान पात्र है और उसकी मूर्खताओं को तथा उसके चरित्र की कमज़ोरियों को दिखाना ही लेखक का उद्देश्य है । इसमें बकरी की हत्या

के अपराध में जब कोतवाल को फाँसी की सजा मिलती है तो फाँसी का फन्दा बड़ा होने के कारण वह बच जाता है । लेकिन उसके बदले में किसी को फाँसी अवश्य देनी चाहिए । इसके लिए मोटे आदमी की खोज करनेवाले सिपाही गोवर्धन दास को पकड़ लेते हैं । लेकिन वह अपने गुरु को याद करता है और गुरु आकर कहते हैं कि इस सायत में जो मरेगा उसे स्वर्ग मिलेगा । यह सुनकर राजा स्वयं फाँसी पर चढ़ने को तैयार हो जाता है । इसके चित्रण द्वारा नाटककार ने राजा की मूर्खता एवं अदूरदर्शिता पर व्यंग्य किया है । यह नाटक सामान्य अशिक्षित लोगों को दृष्टि में रखकर लिखा गया है । इसलिए ही इसमें उन्हीं की भाषा और शब्दावली का प्रयोग हुआ है ।

भारतेन्दु कृत उच्चकोटि का व्यंग्य नाटक है "विषस्य विषमौषधम्" जो एक सत्य घटना पर आधारित है । इसमें बड़ौदा के तत्कालीन शासक मल्हारराव की क्रूरता एवं अत्याचारों का मज़ाक उठाया है । देशी राजाओं के अनाचार एवं चारित्रिक दुर्बलताओं की व्यंग्यात्मक अभिव्यक्ति भी इसमें हुई है । महाराज मल्हार राव के पतन के चित्रण के द्वारा नाटककार ने देशी राजाओं को चेतावनी दी है ।

अंग्रेज़ भारत आकर अपने छल-बल तथा बुद्धि से राजा बन गये । भारत में अपना अधिकार स्थापित करने के लिए जिन राजाओं ने उसे सहायता दे कर अपना सगा समझा था, उन्हें भी अवसर मिलने पर गद्दी से निकालने में अंग्रेज़ नहीं हिचकते थे । इस प्रकार अनाचारी देशी राजाओं को

तज़ा देने का कार्य भी अंग्रेज़ों ने किया । व्यभिचार-लीला तथा प्रजा-शोषण में डूबे हुए ऐसे राजाओं के प्रति भी नाटककार का मन क्षुब्ध था । श्री रामगोपाल सिंह चौहान का विचार है - "इन्हीं राजाओं में से एक का अपने सगे अंग्रेज़ों द्वारा गद्दी से उतारा जाना, जिस गद्दी पर वे अंग्रेज़ों की शरण में अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझे बैठे थे, भारतेन्दु को यह व्यंग्य रूपक लिखने की प्रेरणा दे सका, यह स्वाभाविक ही था, क्योंकि उस समय जब सब ओर अनाचार और व्यभिचार का बोलबाला था, इसके लिए एक राजा जैसी हस्ती का दण्डित होना प्रगति का ही सूचक था ।"[1]

ब्रिटिश सरकार के हाथों में देशी राजा तथा सामन्त शतरंज के मोहरों की तरह है । डॉ. लक्ष्मीराय के अनुसार "विषस्य विषमौषधम्" अंग्रेज़ी सरकार के पिट्ठू देशी राजाओं के दुराचार एवं सामंतशाही को उद्घाटित किया गया है ।"[2]

गरज है कि श्री भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अपने अधिकांश नाटकों के द्वारा अंग्रेज़ों के शासन की क्रूरता एवं उनकी कूटनीतिज्ञता पर तीखा प्रहार किया है । साथ ही साथ अपनी दयनीय स्थिति का चित्रण करके भारतीयों के मन में देशप्रेम एवं स्वतंत्रता की भावना को जागृत करने का भी सफल प्रयास किया है ।

---

1. श्री रामगोपाल सिंह चौहान - भारतेन्दु साहित्य - पृ. 124
2. डॉ. लक्ष्मीराय - आधुनिक हिन्दी नाटक चरित्र-सृष्टि के आयाम -पृ. 70

प्रताप नारायण मिश्र

भारतेन्दु युग का एक मशहूर नाटककार है श्री प्रताप नारायण मिश्र । युगदृष्टा साहित्यकार होने के नाते तत्कालीन आन्दोलनों एवं समस्याओं से वे अपने आपको मुक्त नहीं कर सकते । उनके अधिकांश नाटक देश-सेवा एवं समाज-सुधार की भावना से युक्त है । "भारत-दुर्दशा" तथा "हठी हम्मीर" उनके श्रेष्ठ राजनैतिक नाटक हैं । पराधीन भारत के प्रति उनके मन में जो देशप्रेम की भावना है, उसकी अभिव्यक्ति "भारत-दुर्दशा" में हुई है । साथ ही साथ भारत की दयनीय स्थिति का चित्रण भी इसमें हुआ है । इसमें नाटककार ने कलियुग के मंत्री तथा सिपाही कुमत, आलस्य, कुपथ्य, मदिरा आदि के द्वारा यह सिद्ध करने की कोशिश की है कि भारत की स्थिति अत्यन्त जर्जरित एवं पराधीन है । भारत की इस गिरी हुई स्थिति पर दुख प्रकट करने के साथ साथ इसमें नाटककार ने देश को स्वावलंबी बनाने की अपनी अदम्य आशा भी व्यक्त की है ।

अलाउद्दीन खिलजी के रणथम्भोर पर आक्रमण की ऐतिहासिक कथा को लेकर लिखा गया नाटक है "हठी हम्मीर" । प्राचीनकाल के वैभव का चित्रण इसमें हुआ है । रणथम्भोर के राजा हम्मीरदेव की शरणागत वत्सलता, वीरता, प्रजावत्सलता, धर्मनिष्ठा, सत्यनिष्ठा, नीतिनिष्ठा आदि का परिचय भी इसमें मिलता है ।

पं. बालकृष्ण भट्ट

इस समय के अत्यन्त प्रबुद्ध एवं लोकप्रिय नाटककार थे पं. बालकृष्ण भट्ट । उन्हें साहित्य सृजन की प्रेरणा भारतेन्दु से ही प्राप्त हुई । मुख्य रूप से उन्होंने पौराणिक तथा सामाजिक कथानक को आधार बनाकर ही नाटकों की रचना की है । "वेणु-संहार" तथा "बृहन्नला" उनके मशहूर राजनैतिक नाटक हैं । अत्याचारी एवं क्रूर शासक वेणु की कथा "वेणु-संहार" में वर्णित है । उसके निरंकुश शासन से प्रजा पीडित एवं दुखी है । लेकिन बाद में ऋषि-शाप से राजा का अन्त होता है और इसप्रकार प्रजा अपने कष्टों से मुक्त हो जाती है । इसमें वेणु की कथा द्वारा नाटककार ने अंग्रेज़ों के क्रूर शासन को समाप्त कर, प्रजातंत्र शासन की स्थापना की चाह व्यक्त की है साथ ही साथ जनता को संगठित होकर अन्याय का विरोध करने का आह्वान भी दिया है ।

महाभारत के अर्जुन की कथा पर आधारित नाटक है "बृहन्नला" । तत्कालीन समाज की विकृतियों का यथार्थ चित्रण इसमें हुआ है । नाटककार ने इसमें नारी की स्वतंत्रता में बाधा डालनेवाली - पर्दा प्रथा और अनमेल विवाह पर अपनी घोर अनास्था प्रकट की है । नाटक में महाभारत की कथा को लेकर चलते समय भी नाटककार ने अपने देश की दशा का चित्रण ही किया है और बुराई का तिरस्कार भी किया है ।

राधा चरणगोस्वामी

भारतेन्दु युग का एक महान नाटककार था श्री राधाचरण गोस्वामी । उनके प्रमुख राजनैतिक नाटक थे "सती चन्द्रावली",

"अमरसिंह राठौर" आदि । "सती चन्द्रावली" में धर्म की रक्षा के लिए राजकीय सुखभोगों को त्यागकर युद्ध में प्राण खोनेवाली एक आदर्श वीर वनिता का चित्रण है । राष्ट्रीयता एवं समाज सुधार की भावना का चित्रण उनके नाटकों की विशेषता है । "अमरसिंह राठौर" ऐतिहासिक कथा पर आधारित नाटक है । देश की पराधीनता को देखकर नाटककार के मन में जो दुःख है, उसकी अभिव्यक्ति इसमें हुई है । देशप्रेम की भावना से युक्त एक नाटक है यह । इसमें नाटककार ने वीर पुरुषों के चरित्रों के माध्यम से पराधीनता की जंजीर में जकडी, निराश जनता को जागृत करके, देश की रक्षा के लिए आत्म-बलि देने का सन्देश दिया है । नाटक की भूमिका में नाटककार ने स्वयं कहा है -"भारत में जबकि प्रकृत स्वाधीनता और वीरता का प्राण-वियोग हुए सैकडों वर्ष हो गये, तब पुस्तक - पात्रों के द्वारा ही हम स्वाधीनता, वीरता के लिए अश्रु-विसर्जन करके कृतार्थ होंगे ।"[1]

राधाकृष्ण दास

भारतेन्दु के फुफेरे भाई राधाकृष्ण दास इस युग के बहुमुखी प्रतिभा के धनी लेखक थे । ऐतिहासिक कथानक पर आधारित, उनके दो प्रमुख नाटक हैं - "महारानी पद्मावती" और "महाराणा प्रताप" । "महारानी पद्मावती" में पद्मावती के सौन्दर्य से आकृष्ट होकर उसको प्राप्त करने के लिए अलाउद्दीन चित्तौड पर आक्रमण करता है । लेकिन पद्मावती उससे बचने केलिए जौहर की ज्वाला में प्राण त्यागकर अपने साहस का परिचय देती है । इसमें राजपूत रमणियों की वीरता के चित्रण द्वारा नाटककार ने तत्कालीन नारी समाज को प्रेरणा देने का सफल प्रयास किया है ।

---

1. राधाचरण गोस्वामी - अमरसिंह राठौर - भूमिका

अकबर और महाराणा प्रताप की कथा पर आधारित नाटक है "महाराणा प्रताप" । इस नाटक में राणा प्रताप को एक धीर-वीर, साहसी एवं क्षमाशील व्यक्ति के रूप में चित्रित किया है जो धैर्य के साथ हँसते-हँसते स्वतंत्रता की बलिवेदी पर अपनी बलि चढाता है । मंत्री भामह शाह के चरित्र द्वारा एक आदर्श मंत्री के चरित्र का उद्घाटन हुआ है । इस नाटक में उन्होंने तत्कालीन राजनैतिक एवं सामाजिक स्थिति का यथार्थ चित्रण अंकित किया है ।

भारतेन्दु युग के बाद प्रसाद के आगमन तक (1901 से 1920 तक) नाटक के क्षेत्र में कोई विशेष प्रगति नहीं हुई । इस काल को सन्धिकाल या संक्रांतिकाल कहते हैं । इस युग के नाटकों में राजनीति की विशेष चर्चा नहीं मिलती । फिर भी इस समय के कुछ एक नाटककारों ने अपने नाटकों में ब्रिटिश शासन के अत्याचार, निरंकुशता, शोषण एवं भारतीयों की देश भक्ति तथा स्वतंत्रता की भावना की चर्चा की है । इन नाटककारों ने अपनी रचनाओं द्वारा अंग्रेज़ों के शासन की क्रूरता के बारे में जनता को समझाकर, उसे मुक्ति की प्रेरणा देने की कोशिश की है । ऐसा एक नाटककार था श्री माखनलाल चतुर्वेदी जिन्होंने अपने नाटक "कृष्णार्जुनयुद्ध" में अंग्रेज़ों के भ्रष्ट शासन एवं कूटनीति तथा उसके कारण भारत की सामाजिक दुरवस्था की ओर जनता का ध्यान आकृष्ट करने का सफल प्रयास किया है । नाटककार की राय में जो राजा प्रजा के दु:खों की चिन्ता नहीं करता, वह राज्य को सर्वनाश की ओर ले जाता है ।

श्री राधेश्याम कथावाचक ने "परम भक्त प्रह्लाद", "द्रौपदी स्वयंवर", "वीर अभिमन्यु" जैसे नाटकों द्वारा तत्कालीन राजनैतिक स्थिति का जीवन्त चित्रण किया है । पौराणिक कथानक पर आधारित "परम भक्त प्रह्लाद" में हिरण्य कश्यप के क्रूर शासन द्वारा ब्रिटिशों की निरंकुशता पर तीखा व्यंग्य किया है । नाटककार ने ब्रिटिश शासन को आसुरी शासन माना है । "द्रौपदी स्वयंवर" नाटक में नाटककार ने ब्रिटिशों के शोषण का स्पष्ट विरोध किया है और "वीर अभिमन्यु" के द्वारा तत्कालीन समाज में स्वतंत्रता की भावना को जागृत करने की कोशिश की है । इसमें मातृभूमि के लिए अभिमन्यु अपने प्राणों की बलि देता है जिसके माध्यम से नाटककार भारतीय जनता को भी देश की मुक्ति का सन्देश देना चाहता है ।

प्रसादयुगीन नाटक (1921 से 1935 ई. तक)

भारत के इतिहास में 1921 से 1936 तक का समय राजनीतिक चेतना एवं संघर्ष का समय था । इसलिए इस युग के नाटककारों का ध्यान भी उस ओर आकृष्ट हुआ । इस समय के कुछ नाटककारों ने अपने नाटकों में ब्रिटिश शासन की क्रूरता एवं शोषण नीति, देश भक्ति तथा स्वतंत्रता का विशेष उल्लेख किया है । अधिकांश नाटककारों ने ऐतिहासिक, पौराणिक एवं सामाजिक कथानकों के माध्यम से अपने नाटकों में तत्कालीन समाज का यथार्थ चित्र ही अंकित किया है । इस युग के नाटककारों ने सामाजिक तथा राजनीतिक समस्याओं को अपनी रचनाओं द्वारा जनता के समक्ष प्रस्तुत किया । प्राय: सभी नाटककारों पर स्वतंत्रता-संग्राम का

प्रभाव पड़ा था । राजनीतिक चेतना से युक्त नाटक लिखनेवाले इस युग के मशहूर नाटककार थे "श्री जयशंकर प्रसाद" ।

जयशंकर प्रसाद

जब भारत में स्वतंत्रता-संग्राम चरमोत्कर्ष पर था, उसी समय श्री जयशंकर प्रसाद ने हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में पदार्पण किया । इसलिए उनकी प्राय: सभी रचनाओं में राष्ट्रीय नवजागरण का सन्देश एवं गान्धीवादी विचारधारा की झलक द्रष्टव्य है । अपने नाटकों द्वारा उन्होंने विदेशी दासता की जंजीर में जकड़ी भारतीय जनता के मन में शक्ति एवं सुरक्षा की भावना का संचार करके उन्हें सान्त्वना एवं आत्मविश्वास प्रदान करने की सफल कोशिश की है । अपनी रचनाओं के लिए उन्होंने इतिहास, पुराण, समाज और विशुद्ध कल्पना पर आधारित कथानक को चुना । राजनीतिक चेतना से युक्त प्रसाद के प्रमुख नाटक हैं - "चन्द्रगुप्त", "स्कन्दगुप्त", "अजातशत्रु", "कल्याणी परिणय", "विशाख" तथा "ध्रुवस्वामिनी" ।

प्रसादजी का सबसे श्रेष्ठ एवं मशहूर नाटक है "चन्द्रगुप्त" । यद्यपि यह नाटक ऐतिहासिक कथानक पर आधारित है फिर भी इसमें नाटककार ने तत्कालीन राजनीतिक स्थिति तथा देशी राजाओं की आपसी फूट का यथार्थ चित्रण भी किया है । इस नाटक में प्रसाद ने नंदवंश का विध्वंस, सिकन्दर का अभियान, सिल्यूकस पर विजय, कार्नेलिया से परिणय, मौर्यों का शासन, भारतीय राष्ट्रीयता के संगठन की समस्या आदि घटनाओं को प्रधानता दी है । चन्द्रगुप्त की

बातों द्वारा नाटककार तत्कालीन गरीब-पीड़ित जनता को जागरण का सन्देश देकर, देश को गुलामी से मुक्त करने के लिए कर्मक्षेत्र में उतरने का आह्वान देता है - "यह जागरण का अवसर है । जागरण का अर्थ है कर्मक्षेत्र में अवतीर्ण होना । और कर्मक्षेत्र क्या है ? जीवन - संग्राम ।"[1] फिर देश के वीरों को स्वतंत्रता के लिए आगे बढ़ने का सन्देश देकर गाता है -

हिमाद्रि तुंग शृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती
स्वयंप्रभा समुज्ज्वला स्वतंत्रता पुकारती -
अमर्त्य वीर पुत्र हो दृढ़ प्रतिज्ञ सोच लो,
प्रशस्त पुण्य पंथ है - बढ़े चलो - बढ़े चलो ।"[2]

देश की दुर्दशा देखकर नाटककार के मन में जो दुख एवं वेदना है, वही इसमें व्यक्त हुआ है । नाटक के उद्देश्य के बारे में डॉ. रामकुमार गुप्त का विचार बिलकुल सही लगता है - "चन्द्रगुप्त" नाटक का मूल उद्देश्य है - विदेशियों के निष्कासन द्वारा संपूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न एक छत्र भारतीय राज्य की स्थापना ।"[3]

स्कन्दगुप्त" भी ऐतिहासिक कथानक पर आधारित नाटक है। यह भी वर्तमान समाज में राष्ट्रीय भावना तथा देशप्रेम को जागृत करने के

---

1. जयशंकर प्रसाद - चन्द्रगुप्त - पृ. 149
2. जयशंकर प्रसाद - चन्द्रगुप्त - पृ. 155
3. डॉ. रामकुमार गुप्त - आधुनिक हिन्दी नाटक और नाट्यकार - पृ. 47-48

उद्देश्य से लिखा गया है । इसमें नायक स्कन्दगुप्त का चित्रण प्रारंभ में कर्मभीरु के रूप में हुआ है । लेकिन बाद में पर्णदत्त की प्रेरणा से उसके मन में अपने कर्तव्य की भावना जाग उठती है, फिर वह एक कर्मठ तथा साहसी राष्ट्रनेता बन जाता है । उसके नैतिक आदर्श तथा सद्गुणों से विरोधी लोग भी प्रभावित हो जाते हैं । आखिर स्कन्दगुप्त राष्ट्रोद्धार में भी सफल बन जाता है । उसके चरित्र के चित्रण द्वारा नाटककार ने युग-चेतना की भी अभिव्यक्ति दी है । इसमें स्कन्दगुप्त की जो कथा वर्णित है वह इतिहास सम्म है । लेकिन देवसेना और विजया से संबंधित कथांश नाटककार की कल्पना की उपज है ।

स्कन्दगुप्त नाटक में नाटककार ने देश की रक्षा का सन्देश दिया है । इसमें कमला, स्वतंत्रता का सन्देश सुनाती हुई स्कन्दगुप्त से कहती है - "उठो स्कन्द ! आसुरी वृत्तियों का नाश करो, सोनेवालों को जगाओ, रोनेवालों को हँसाओ । आर्यावर्त तुम्हारे साथ होगा और उस आर्य-पताका के नीचे समग्र विश्व होगा ।"[1] इसके द्वारा नाटककार तत्कालीन जनता को जागृत होकर देश की प्रगति के लिए काम करने का आह्वान दे रहे हैं ।

प्रसाद के स्वच्छन्दतावादी दृष्टिकोण का परिचय देनेवाला ऐतिहासिक नाटक है "अजातशत्रु" । राष्ट्र-कल्याण को लक्ष्य करके यह नाटक लिखा गया है । इसके द्वारा नाटककार जनता को देश की स्वतंत्रता एवं

---

1. जयशंकर प्रसाद - स्कन्दगुप्त - पृ. 125

उन्नति के लिए अपने प्राणों की आहुति देने का उपदेश देते हैं । "कल्याणी-परिणय" भी ऐतिहासिक कथा पर आधारित नाटक है । इसमें चन्द्रगुप्त सिल्यूकस को पराजित कर उसकी पुत्री कार्नेलिया से शादी करता है । इसके बाद दोनों पक्षों की मैत्री होती है, कल्याण होता है । लेकिन आज यह नाटक स्वतंत्र रूप में उपलब्ध नहीं । चन्द्रगुप्त के चतुर्थ अंक के रूप में इसका अन्तर्भाव हो गया है । "विशाख" शीर्षक अपने नाटक में भी प्रसाद जी ने एक साधारण कथानक के द्वारा देश की तत्कालीन राजनैतिक तथा सामाजिक समस्याओं का चित्र अंकित किया है ।

राजनैतिक चेतना से युक्त प्रसाद का अंतिम ऐतिहासिक नाटक है "ध्रुवस्वामिनी" । यह भी युगीन समस्याओं की ओर संकेत करनेवाली नाट्यकृति है । यह राजकुल के पारिवारिक - कलह से संबंधित है । भारतीय इतिहास के सुवर्ण-युग गुप्त-काल की कथा को लेकर इस नाटक की रचना हुई है । इसमें गुप्तवंश के दुर्बल एवं असमर्थ सम्राट रामगुप्त के शासन काल की घटना वर्णित है । शकों ने जब रामगुप्त को पराजित किया तब शक राजा उपहार के रूप में रामगुप्त की पत्नी 'ध्रुवस्वामिनी' को माँग लेता है । रामगुप्त अपनी रक्षा के बारे में सोचकर इसके लिए सहमत हो जाता है । लेकिन उसे बचाने के लिए चन्द्रगुप्त सामंत कुमारों के साथ शक-शिविर में पहुँचता है और अपने कुल के गौरव की रक्षा करता है ।

इस नाटक में नाटककार ने वर्तमान युग में स्त्रियों की दुर्दशा की ओर संकेत किया है । आज की नारी अपने अधिकारों के लिए जागरूक

होकर, उसे पाने के लिए विद्रोह करने को भी तैयार है । अत्याचारों और अन्यायों का विरोध करने का धैर्य एवं शक्ति उसमें है । डॉ. रामकुमार गुप्त की राय में "ध्रुवस्वामिनी आधुनिक नारी का वह रूप है, जो उस समाज की रूढ़ियों को तोडने के लिए कटिबद्ध है, जिनके कारण आज नारी-जीवन अत्याचारों के कारागृह में बन्दी है । अपने पति की क्लीवता के सम्मुख वह विद्रोह कर बैठती है । उसकी ललकार में आधुनिक नारी का स्वर गूँज उठता है, जो पुरुषों के अत्याचारों के प्रति अपना सिर उठाने का प्रयास कर रही है ।"[1] इसमें नाटककार ने राज्याधिकार की समस्या का निरूपण भी किया है । नाटककार की मान्यता तो यही है कि रामगुप्त जैसे दुर्बल एवं अयोग्य राजा को सिंहासन पर बैठने का कोई अधिकार नहीं है ।

बदरीनाथ भट्ट

राजनीतिक चेतना से युक्त नाटक लिखनेवाले और एक नाटककार है श्री बदरीनाथ भट्ट । उनके दो नाटक मशहूर हुए हैं - "चन्द्रगुप्त" और "वेन-चरित" । "चन्द्रगुप्त" नाटक चन्द्रगुप्त तथा सिकंदर की इतिहास प्रसिद्ध कथा पर आधारित है । इसमें ऐतिहासिकता के साथ साथ तत्कालीन राजनैतिक जीवन का भी उल्लेख किया है । "वेन-चरित" में राजा वेन की क्रूरता के माध्यम से नाटककार ने ब्रिटिश शासन की निरंकुशता का चित्रण किया है ।

---

1. डॉ. रामकुमार गुप्त - हिन्दी नाटक के प्रमुख हस्ताक्षर - पृ. 61-62

डॉ. बलदेव प्रसाद मिश्र

इस युग के मशहूर नाटककार थे डॉ. बलदेव प्रसाद मिश्र । उनका "वासना-वैभव" राजनीतिक चेतना से युक्त नाटकों के क्षेत्र में विशेष उल्लेखनीय है । यह राजा ययाति तथा देवयानी के पौराणिक आख्यान के आधार पर लिखा गया नाटक है । इसमें विषय-वासना के दुष्परिणाम दिखाया गया है । राजा की सुखलोलुपता के कारण जब देश में अव्यवस्था फैल जाती है तो जनता इसका विरोध करती है, और इससे राजा पछताता है । इसमें नाटककार ने पुराण के द्वारा वर्तमान भारत की दयनीय स्थिति का चित्र अंकित किया है । तत्कालीन शासकों के भ्रष्टाचार तथा विलासिता का चित्र इसमें खींचा गया है । साथ ही साथ जनता के विद्रोह का चित्रण करके, जनक्रांति की प्रेरणा भी नाटककार ने दी है ।

सुदर्शन

प्रसादयुग के तेजस्वी कलाकार है श्री सुदर्शन । उनका नाटक "सिकन्दर" राजनीतिक चेतना से युक्त है । पुरु और सिकन्दर की ऐतिहासिक कथा को लेकर इस नाटक की रचना हुई है । इसमें पुरु और सिकन्दर के युद्ध के वर्णन द्वारा नाटककार ने तत्कालीन जनता में राष्ट्रीयता एवं देशप्रेम की भावना को जागृत करने की कोशिश की है ।

श्री जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द ने भी "प्रताप-प्रतिज्ञा" नाटक के द्वारा पराधीन भारतीय जनता के मन में देशप्रेम एवं स्वाधीनता की

भावना को फूँकने का सफल प्रयास किया है । इसमें उन्होंने महाराणा प्रताप के चरित्र की कर्मठता, त्याग, बलिदान आदि सद्गुणों का जो उल्लेख किया है उससे तत्कालीन समाज को प्रेरणा प्राप्त हुई । इसमें राणा प्रताप ने अपनी मातृ-भूमि "मेवाड के हित के लिए अपना तन-मन-धन, सर्वस्व अर्पण करने" की जो प्रतिज्ञा की, उसके माध्यम से नाटककार ने तत्कालीन जनता को देश की स्वतंत्रता के लिए लडने और अपनी बलि देने का आह्वान किया । इसमें सेठ भामहसिंह की कथा द्वारा अमीर लोगों को देश की मुक्ति के लिए अपनी सम्पत्ति का विनियोग करने की प्रेरणा भी दी गयी है ।

इस युग के और एक ख्यातिप्राप्त नाटककार है श्री चतुरसेन शास्त्री । उन्होंने अपने नाटक "राजसिंह" में राष्ट्रीय एवं स्वाधीनता की भावना की अभिव्यक्ति दी है । इसके द्वारा वे भारत के घर-घर स्वाधीनता का सन्देश पहुँचाकर विदेशी दासता से भारत को मुक्त करना चाहते हैं । उसी प्रकार पाण्डेय बेचन शर्मा "उग्र" ने अपने नाटक "महात्मा ईसा" में स्वतंत्रता एवं देश के उद्धार की भावना को व्यक्त किया है । नाटककार का विचार है कि देशोद्धार के लिए कर्मयोग की ज़रूरत है । इसमें विवेकाचार्य की बातों द्वारा नाटककार ने कर्मयोग के अभ्यास की आवश्यकता पर बल दिया है ।

श्री मिश्रबन्धु का देशप्रेम एवं राष्ट्रीयता की भावना से युक्त एक नाटक है "ईशान वर्मन" । इसमें वीरसेन, ईशान वर्मन जैसे वीरों की वाणी द्वारा तत्कालीन भारतीय जनता को विदेशियों की गुलामी से मुक्त

होने का सन्देश दिया है । इसी समय ही लक्ष्मीनारायण मिश्र नाटक के क्षेत्र में आये । उनका नाटक "सन्यासी" इस अवसर पर विशेष उल्लेखनीय है । यह तत्कालीन घटनाओं से संबंधित है । इसमें देशसेवक मुरलीधर को जेल भेज दिया जाता है । वह आजीवन सन्यासी रहकर देशसेवा करने का निश्चय करता है । उस समय ब्रिटिश शासक भी देश सेवकों को जेल में डाल देते थे, ब्रिटिशों की इस कूटनीति पर नाटककार ने इसमें कुठाराघात किया है । साथ ही साथ लोगों को देशसेवा करने का आह्वान भी किया है ।

श्री उदयशंकर भट्ट ने "विक्रमादित्य" नाटक के द्वारा जनता को स्वाधीनता का सन्देश दिया है । इसमें कुमार नामक युवक का कथन है - "हमारी मातृभूमि पर विदेशी का चरण पड़ें वे लोग हमारे ऊपर बलात्कार करें, और हम बैठे हुए यह सब देखें ?"[1] इसमें विक्रमादित्य ने सारे देश को इकट्ठा करके, विदेशियों का विरोध करके देश को स्वाधीनता का पाठ पढाया । भट्टजी के नाटक "सागर-विजय" में भी स्वाधीनता की भावना की प्रधानता है ।

प्रसादोत्तर युग (पूर्वार्द्ध 1935 से 1947 तक)

प्रसादयुगीन नाटकों की प्रवृत्तियों का विकसित रूप प्रसादोत्तर युगीन नाटकोंमें देखने को मिलता है । देशप्रेम एवं बलिदान की भावना, हिन्दु-मुस्लिम एकता तथा स्वतंत्रता की भावना का चित्रण इस युग के

---

1. उदयशंकर भट्ट - विक्रमादित्य - पृ. 39

नाटकों की विशेषता रही । अधिकांश नाटककारों का ध्यान तत्कालीन राजनैतिक एवं सामाजिक समस्याओं की ओर आकर्षित हो गया । अपनी रचनाओं के द्वारा उन समस्याओं के हल करने की कोशिश भी उन्होंने की ।

प्रसादोत्तर युग के लब्ध-प्रतिष्ठ नाटककार है "सेठ गोविन्द दास" । उन्होंने अपने नाटक "कुलीनता" में भारतीय जनता को मातृभूमि की रक्षा का सन्देश दिया है । इसमें यदुराय को निम्नजाति कहकर देश से निकाल दिया । लेकिन उसने जनशक्ति का संगठन करके कुतुबुद्दीन ऐबक को पराजित करके मातृभूमि को स्वाधीन बनाया । इसके द्वारा नाटककार ने इसमें साम्प्रदायिकता का विरोध भी किया है । "शशिगुप्त" शीर्षक नाटक में भी उन्होंने विदेशियों से देश की मुक्ति दिलाने की कोशिश की है ।

राजनैतिक चेतना से युक्त नाटकों के सृजन करनेवाले नाटककारों में श्री "हरिकृष्ण प्रेमी" का नाम विशेष उल्लेखनीय है । स्वतंत्रता के पूर्व के उनके प्राय: सभी नाटकों का मूल उद्देश्य राष्ट्रीय चेतना को जागृत करना था । "प्रतिशोध" इस दृष्टि से उनका एक सफल नाटक है । इसमें चम्पतराय, सारे देशवासियों को एकता के सूत्र में बाँधकर बुन्देलखण्ड को स्वाधीन बनाने की चाह व्यक्त करता है । उस समय तत्कालीन भारतीय जनता भी ब्रिटिश शासन से मुक्ति की अभिलाषा रखती थी । "आहुति" में भी नाटककार समाज को राष्ट्रीय जागरण का सन्देश देना चाहते हैं । इसमें अलाउद्दीन के आक्रमण का विरोध करके, अपने देश की मुक्ति के लिए प्राण तक न्योछावर करने को प्रस्तुत जनता का चित्र

खींचा है । इसमें राजकुमार जय का कहना है - "जब जन्मभूमि के मान का प्रश्न उपस्थित है, उस समय प्रत्येक युवक का कर्तव्य है अपना बलिदान चढाने को प्रस्तुत हो जाए ।"[1] इसमें नाटककार देशवासियों को देश के लिए त्याग का सन्देश देते हैं ।

प्रेमीजी का और एक नाटक है "शिव-साधना" । इसमें शिवाजी, देश को स्वतन्त्र करना, साम्प्रदायिकता को दूर करना तथा सामाजिक क्रांति करना अपनी साधना मानता है । इसमें संपूर्ण देश को गुलामी से मुक्त करना शिवाजी का उद्देश्य है । "शीशदान" शीर्षक नाटक के द्वारा प्रेमीजी ने समाज में देशप्रेम की भावना को जगाने का सफल प्रयास किया है । इसमें नाटककार ने यह सिद्ध करने की कोशिश की है कि हमारा प्रथम उत्तरदायित्व अपने देश के प्रति है । हमारी लडाई भी सर्वथा देश की स्वतंत्रता के लिए होनी चाहिए । स्वतंत्रता-संग्राम के हमारे नेता भी खून-खराबे की चिन्ता न करके मातृभूमि को अपनी माँ समझकर उसकी मुक्ति के लिए प्राणों की कुरबानी करने पर तुले थे ।

श्री हरिकृष्ण प्रेमी ने "रक्षा बन्धन", "आहुति", "स्वप्न-भंग", "शपथ", "प्रकाश स्तम्भ", "शतरंज के खिलाडी", "कीर्ति-स्तम्भ" आदि ऐतिहासिक नाटकों की रचना द्वारा भी भारतीय जनता में देशप्रेम एवं राष्ट्रीय जागरण की भावना को उत्पन्न करने की कोशिश की है । "रक्षा-बन्धन" में राजपूत वीरों के शौर्य का चित्रण हुआ है ।

---

1. हरिकृष्ण प्रेमी - आहुति - पृ. 59-60

श्री उपेन्द्रनाथ अश्क ने भी अपने नाटकों द्वारा जनता में देशप्रेम एवं स्वतंत्रता की भावना का उद्‌बोधन करने का प्रयत्न किया है । उनका एक सफल नाटक है "जय-पराजय"। इसमें नाटककार यही सन्देश देना चाहते हैं कि अपने देश को स्वतंत्र कराने के लिए शत्रु सेना से टूट पडना चाहिए । इसमें नाटककार अंग्रेज़ों से बदला लेने की भावना पर ज़ोर देते हैं ।

श्री गोविन्द वल्लभ पन्त ने भी अपने नाटकों के ज़रिए राजनैतिक चेतना को उभारा है । "राजमुकुट" नाटक में अपने पुत्र की भी चिन्ता न करके देशप्रेम के महान आदर्श को प्रस्तुत करनेवाली पन्नाधाय जैसी वीर वनिता के चित्रण द्वारा नाटककार ने भारत के "स्त्री-पुरुषों" को देश की रक्षा के लिए महान त्याग करने का उपदेश दिया है । श्री वृन्दावनलाल वर्मा का नाटक "झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई" में लक्ष्मीबाई देश की स्वतंत्रता के लिए स्त्रियों की सेना बनाती हैं और अंग्रेज़ों से युद्ध करती हैं । इसप्रकार नाटककार इसमें देश के स्वतंत्रता-संग्राम में स्त्रियों की हिस्सेदारी पर भी बल देते हैं ।

प्राक्‌स्वतंत्रता कालीन नाटकों पर सरसरी निगाह डालने से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस युग के नाटककारों ने युगीन यथार्थ से जुडकर ही अपने नाटकों की रचना की है । सभी नाटकों की मूलचेतना एक ही है - जैसे देशप्रेम, राष्ट्रीय एकता, निरंकुश शासकों से देश की मुक्ति

की प्रेरणा, स्वतंत्रता की भावना आदि । अपनी रचनाओं के माध्यम से नाटककार मोहनिद्रा में डूबी हुई जनता को जगाना चाहते हैं, खोई हुई स्वतंत्रता हासिल करने की करिश्मा उनमें पैदा करना चाहते हैं । देश के प्रति अपने कर्तव्यों से उन्हें अवगत कराते हैं । नाटक के लिए अतीत से आधार ग्रहण करते समय उस अतीत को चाहे वह इतिहास हो या पुराण, एक दर्पण के समान पाठकों के सामने रख देता है ताकि वे उस दर्पण में अतीत के महापुरुषों की कमियों और खूबियों से परिचित हो जाय । नाटककार यही चाहते हैं कि जनता इन कमियों से दूर रहें और खूबियों को अपनायें । प्राक् स्वतंत्रता कालीन नाटकों का मुख्य स्वर राष्ट्रीय एकता का है । साथ ही उनमें भारतीय संस्कृति के उज्ज्वल चित्र भी प्रस्तुत किये हैं ।

दूसरा अध्याय

स्वातंत्र्योत्तर भारत की राजनीतिक परिस्थितियाँ

दूसरा अध्याय

स्वातंत्र्योत्तर भारत की राजनीतिक परिस्थितियाँ

सदियों पराधीनता की जंजीर में जकडे रहने के बाद 15 अगस्त 1947 ई. को भारत स्वतंत्र हो गया । अनेक वर्ष अंग्रेज़ों के गुलाम के रूप में जीवन बिताने के कारण भारतीय जनता के मन में दासता की भावना व्याप्त थी । नेताओं की प्रेरणा एवं उनके भाषण से गुलाम, पीडित जनता को भी मालूम हो गया कि उनकी बिगडी हुई स्थिति में अवश्य परिवर्तन आयेगा । उनका विश्वास था कि इस यातना के स्थान पर खुशी और सुख के दिन आ जायेंगे । डॉ. ए. एस नारंग का मत है - "स्वतंत्रता संग्राम के समय जनता ने यह समझ लिया कि विदेशी सरकार का शासन समाप्त होने से और विदेशियों के इस देश से जाने से उनकी दी हुई यंत्रणायें समाप्त होगी और हमारे जीवन में सुख-समृद्धि के दिन आ जायेंगे ।"[1] लेकिन देशवासियों के सम्मिलित परिश्रमों, यातनाओं एवं आन्दोलनों के बाद जब देश को स्वतंत्रता मिली, तब उसके सामने अनेक समस्यायें भी थी, जिनका हल करना आसान नहीं था । आज़ादी के बाद जन्म लेनेवाली युवा पीढी ने चारों ओर

---

1. " During the independence struggle the people were fed on the idea that all their sufferings and miseries were due to the alien rule and once the British left the country they would have an era of plenty and all their sufferings would come to an end" - Dr.A.S.Narang- Indian Government and Politics - P-204.

भ्रष्टाचार, घूसखोरी, चोरबाज़ारी, महंगाई, राजनीतिज्ञों की अनैतिकता तथा आदर्श हीनता, स्वार्थवृत्ति, बेकारी आदि विद्रूपताओं को ही देखा ।

स्वतंत्र भारत की सबसे पहली अग्निपरीक्षा देश-विभाजन से उत्पन्न समस्यायें थी । पूर्वी बंगाल और पश्चिम पंजाब के भाग पाकिस्तान में चले गए । इन दोनों स्थानों पर मुसलमान ही अधिक रहते थे । हिन्दू लोग बहुत कम था । स्वतंत्रता के पूर्व ये हिन्दू और मुसलमान पास-पडोस में भाई-भाई की तरह मित्रता में रहते थे । जब भारत और पाकिस्तान के रूप में देश का विभाजन हो गया तो हिन्दू और मुसलमान अलग-अलग होकर एक दूसरे पर अत्याचार करने लगे, जिसका प्रभाव आज भी देश के विभिन्न प्रदेशों में हम देख सकते हैं ।

देश-विभाजन एवं उसकी विभीषिकाओं के कारण देश भर में दुख, निराशा, विद्वेष, घृणा, अनिश्चय आदि का दु:खपूर्ण वातावरण छा गया । लोग बेघरबार हो जाने और सम्बन्धियों से अलग हो जाने के दु:ख से और भविष्य में पुन: होनेवाले संघर्षों एवं कष्टों की आशंका से पीडित थे ।

देश-विभाजन ने कई समस्याओं को जन्म दिया जिनमें प्रमुख थी शरणार्थियों के पुनर्वास की समस्या । अपनी संपत्ति और घरबार छोडकर भारत से पाकिस्तान चले गये मुसलमानों की स्थिति सुधारने के लिए

55 करोड[1] रुपये पाकिस्तान को देने का भार भी भारत पर आ गया । इसके अतिरिक्त पाकिस्तान से आए शरणार्थियों के संरक्षण का भार भी भारत सरकार पर आ पडा । इस प्रकार देश की आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति पर भी 'भारत-विभाजन' का दुष्परिणाम पडा ।

स्वतंत्र भारत के सामने और भी एक बडी समस्या थी - देशी रियासतों के विलय की । अन्त में सरदार पटेल ने बडी चतुराई से प्राय: सभी राजाओं और महाराजाओं को भारतीय संघ में सम्मिलित होने के लिए राजी कराके इस समस्या का भी हल किया । देश विभाजन के बाद भारत सरकार से पाकिस्तान को 55 करोड रुपये, गाँधीजी ने दिलाया तो हिन्दुओं ने उन्हें मुसलमानों का समर्थक समझा । इसी प्रकार जब सितम्बर 1947 में दिल्ली या उसके आसपास बिहार में झगडे हुए, तो महात्माजी ने मुसलमानों को बचाने की चेष्टा की । इन सारी बातों के फलस्वरूप हिन्दुओं में एक वर्ग ऐसा उत्पन्न हो गया, जिसने हर कदम पर गांधीजी का विरोध करना शुरू किया, यहाँ तक कि उनकी प्रार्थना सभाओं में भी लोग उन से बुरी तरह पेश आने लगे । उनके विरोधियों ने, स्वतंत्र भारत में जीवित रहने को उन्हें छ: महीने की अवधि भी नहीं दी । 30 जनवरी सन् 1948 को प्रार्थना स्थल पर ही गान्धीजी की निर्मम हत्या हुई ।[2] गाँधीजी की हत्या से सारा देश हाहाकार हो उठा । इसका प्रभाव भावी भारत के निर्माण पर पडा । क्योंकि वे भारतीय स्वाधीनता संग्राम के अलौकिक प्रेरणा-सिंधु थे जिन्होंने राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक

---

1. मन्मथ नाथ गुप्त - कांग्रेस के सौ वर्ष - संघर्ष और सफलता का इतिहास - पृ. 176

परिवर्तन की प्रेरणा देकर राष्ट्रीय शक्ति को जगायी और गुलाम एवं असंगठित भारतीय जनसमूह में स्वातंत्र्य प्राप्ति के लिए संकल्प कर दिया ।

देश विभाजन के बाद जन संख्या के 82 प्रतिशत भारत में आया । लेकिन कृषि क्षेत्र 75 प्रतिशत ही मिला था । पंजाब, सिन्ध जैसे गेहूँ उपजाने में प्रसिद्ध प्रदेश पाकिस्तान में चले गये । इसलिए खाद्यान्न की कमी की समस्या भी भारत में सिर उठाने लगी ।

स्वतंत्रता के बाद शासन ने भी कई करवटें बदलीं । बार बार बदलते आये शासन ने भी देश की राजनैतिक तथा आर्थिक स्थिति को परिवर्तित किया । देश में हमेशा स्थिर शासन का अभाव रहा । स्वतंत्र भारत में चुनाव के माध्यम से ही शासक अधिकार में आ जाते हैं । प्रथम चुनाव 1951 में हुआ जिसमें कॉंग्रेस की जीत हुई । जवाहर लाल नेहरू प्रधान मंत्री बन गये । इस चुनाव में राज्यसभा के 3278 स्थानों के लिए 17,000 और लोकसभा के 497 स्थानों के लिए 1823 उम्मीदवार थे ।[1] इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि आज हमारे नेताओं के मन में जो पदलोलुपता है वह उस समय से ही थी ।

लोकसभा का दूसरा चुनाव 1957 को[2] हुआ । इसमें केन्द्र में केरल को छोडकर सभी राज्यों में कॉंग्रेस पार्टी अधिकार में आयी

---

1. विश्वविज्ञान कोश (मलयालम) भाग-2 - पृ. 274

और जवाहरलाल नेहरू फिर प्रधानमंत्री बन गये । केरल में कम्युनिस्ट पार्टी की जीत हुई ।

तीसरा चुनाव 1962 में हुआ जिसमें भी कांग्रेस पार्टी विजयी हुई और जवाहर लाल नेहरू प्रधानमंत्री बने । "27 मई 1964 को नेहरूजी का देहान्त हो गया । श्री नेहरू 17 साल तक भारत के प्रधान मंत्री रहे । जब से सरदार पटेल का देहान्त हुआ था, तब से वही शासन तथा कांग्रेस संस्था में सर्वोपरि थे ।"[1] नेहरूजी के स्वर्गवास के बाद लाल बहादुर शास्त्री ने प्रधान मंत्री का पद स्वीकार किया । लेकिन जल्दी ही, ताष्कन्द चर्चा के समय 10 जनवरी 1966 को लाल बहादुर शास्त्री की मृत्यु हुई ।[2] हर समय विरोधी पार्टी के लोग सत्ताधारी पार्टी की आलोचना करते रहे । शास्त्रीजी के देहावसान के बाद राजनीति के क्षेत्र में फिर अस्थिरता छा गयी । शास्त्रीजी के बाद श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने प्रधानमंत्री का पद संभाला ।

1967 के लोकसभा के चौथे चुनाव में भी कांग्रेस की जीत हुई । दुबारा, इन्दिरागान्धी प्रधानमंत्री बन गयी । उस समय चुनाव जीते कांग्रेस सदस्यों की संख्या बहुत कम (279) थी ।[3]

---

1. मन्मथ नाथ गुप्त - कांग्रेस के सौ वर्ष - संघर्ष और सफलता का इतिहास - पृ. 194
2. मन्मथ नाथ गुप्त-कांग्रेस के सौ वर्ष-संघर्ष और सफलता का इतिहास-पृ. 196
3. विश्वविज्ञान कोश -भाग 2 - पृ. 276

इसका कारण यह था कि चुनाव के पहले ही पार्टी के सदस्यों का मतैक्य नष्ट हो गया था। नेताओं के 'सत्तामोह' के कारण पार्टी के बूढे और युवक वर्ग के बीच अनैक्य बढ गया। काँग्रेस का झंडा लेकर भी इन लोगों के मन में अपनी पार्टी के उम्मीदवार को पराजित करने का विचार था। इसके लिए चुनाव के समय वे कई प्रकार के षड्यंत्रों की रचना करते थे। दल-बदल राजनीति का जन्म भी इस प्रकार ही हुआ।

काँग्रेस पार्टी के सदस्यों के बीच मतभेद होने के कारण 1969 में[1] यह पार्टी काँग्रेस - नयी और पुरानी - के रूप में विभाजित हो गयी। "काँग्रेस के संपूर्ण इतिहास में संस्था का यह पहला स्पष्ट विभाजन था। इससे पहले लोग काँग्रेस से अलग होकर अपनी अलग संस्था बना लेते थे, परन्तु अब काँग्रेस नाम में ही "नई" और "पुरानी" जोड दिया गया। यह, नेतृत्व की लडाई के साथ नीतियों की भी लडाई थी।"[2]

1971 के पाँचवें लोकसभा चुनाव में इंदिरागान्धी के नेतृत्व की काँग्रेस की जीत हुई।[3] इस प्रकार तीसरी बार इंदिरा गांधी प्रधानमंत्री बन गईं। इस समय, एक पार्टी छोडकर नयी पार्टी बनानेवाले दल-बदलू नेताओं के प्रति जनता के मन में आदर का भाव नहीं था, बल्कि घृणा की भावना थी। वे सत्ताप्राप्ति के लिए अनैतिक मार्ग को भी अपनाने वाले इन

---

1. Malayala Manorama year Book- 1988- P-173.
2. मन्मथनाथ गुप्त - काँग्रेस के सौ वर्ष-संघर्ष और सफलता का इतिहास -पृ. 191
3. Malayala Manorama year Book 1988- P-173.

नेताओं का विरोध करने लगीं । "12 जून, 1975 को इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने इन्दिरा गाँधी के चुनाव के विरुद्ध फैसला दिया । फैसले में सर्वोच्च अदालत में अपील करने के लिए 20 दिन की मुहलत दी गयी । फिर भी लोगों ने यह कहना शुरू किया कि इन्दिरागाँधी फौरन इस्तीफा दें । 24 जून को सर्वोच्च अदालत के न्यायाधीश ने कहा कि इन्दिरागाँधी के प्रधानमंत्रित्व पर कोई रोक नहीं है, पर वह सांसद के रूप में तब तक मत न दें जब तक अपील पर पक्का फैसला नहीं हो जाता । इस पर भी जनसंघ, संगठन काँग्रेस पुरानी तथा लोकदल प्रधानमंत्री के इस्तीफे की मांग करते रहे । इन्हीं परिस्थितियों में 26 जून, 1975 को देश में आपात् स्थिति घोषित कर दी गई ।"[1] लेकिन यह भी बडे हद तक व्यापक जन-असन्तोष का कारण बना । यह भारत का प्रथम असाधारण विस्फोट थी । इस समय कई बडे बडे नेता गिरफ्तार किये गये । देश के साहित्यकार भी स्वतंत्र नहीं थे । उनकी अभिव्यक्ति का स्वातंत्र्य छीन लिया गया था । अधिकांश लोग डर के कारण चुप हो गये । ऐसे लोगों में कई लेखक भी थे । लेकिन इससे देश में अनुशासन की भावना अवश्य बढ गयी । लेकिन इसके साथ जनता की स्वतंत्रता नष्ट हो गयी । आपात्काल का विरोध करने का साहस किसी में भी नहीं था ।

जनवरी 18-1977 को छठे लोकसभा चुनाव की घोषणा हुई । 1977 मार्च 21 को आपात्काल समाप्त किया गया ।[2] अब तक शासन काँग्रेस के हाथ में रहा था, लेकिन छठे लोकसभा चुनाव आपातकाल की छाया में होने के कारण इसमें काँग्रेस पार्टी पराजित हो गयी और शासन जनता

---

1. मन्मथनाथ गुप्त - काँग्रेस के सौ वर्ष - संघर्ष और सफलता का इतिहास - पृ. 200
2. Malayala Manorama Centenary year Book- 1988- P- 111.

पार्टी के हाथ में आ गया । प्रधानमंत्री के रूप में श्री मोरारजी देशाई विराजमान हो गये । लेकिन उस बार संयुक्त मंत्रिमंडल होने के कारण अनेक नेताओं के मन में प्रधानमंत्री पद का मोह था । इन सत्तामोही नेताओं के कारण प्राय: वाद-विवाद होते रहते थे । सरकार के विभिन्न घटकों के बीच के इस मतभेद के कारण देश की राजनैतिक एवं सामाजिक स्थिति भी बिगड गयी । ऐसी स्थिति में श्री मोरारजी देशाई को विवश होकर, 1979 जुलाई 15 को त्यागपत्र देना पडा ।[1] जुलाई 28[2] को श्री चरणसिंह प्रधानमंत्री पद पर आ गये । लेकिन उन्हें प्रधानमंत्री के रूप में एक महीना भी पूर्ण करने का अवसर नहीं मिला । 1979 अगस्त 21 को लोकसभा स्थगित की गई, इसलिए अगस्त 20 को उन्होंने त्यागपत्र दिया ।

सप्तम लोकसभा चुनाव 1980[3] जनवरी में हुआ । इसमें फिर काँग्रेस की जीत हुई और श्रीमती इन्दिरा गाँधी प्रधानमंत्री बनीं । "इस चुनाव में अकालियों की हार से अकाली नेतृत्व बौखला गया, और तब से वह तेज़ी से आतंकवाद की ओर बढने लगा ।"[4] अनेक प्रांतों में विघटन और शासन में परिवर्तन आये । 1982 में[5] काँग्रेस के दो दल मिलकर एक हो गया ।

---

1. Manorama Year Book -1988- P-174.
2. Manorama Year Book- 1988- P.174.
3. मन्मथनाथ गुप्त - काँग्रेस के सौ वर्ष-संघर्ष और सफलता का इतिहास - पृ. 204
4. मन्मथनाथ गुप्त - काँग्रेस के सौ वर्ष-संघर्ष और सफलता का इतिहास - पृ. 208
5. Manorama year Book -1988- P.175.

1983 में पंजाब में राष्ट्रपति शासन शुरू हुआ ।[1] उस समय कुछ लोगों ने पंजाब में एक स्वतंत्र राष्ट्र खलिस्तान की माँग की । असम में विदेशियों की समस्या, देश के पूर्वांचल में मिज़ो तथा नागा जनजातियों के द्वारा भारतीय संघ से अलग होने की चेष्टा आदि घटनाएँ इसी समय हुई । 'पंजाब की समस्या इतना भयानक रूप धारण कर गई कि अमृतसर के गुरुद्वारे को युद्ध केन्द्र में परिवर्तित किया । सुवर्ण मन्दिर में हथियार ढेर करके वे भारत के विरुद्ध लडाई शुरू करनेवाले थे । 25 अप्रैल 1983 को सुवर्ण मन्दिर के सामने ही डी. आई. जी. पुलिस, अटवाल की हत्या कर दी गई । फिर भी सरकार कार्यवाही करने से इस लिए हिचकिचा गई कि सिक्खों की धार्मिक भावनाओं को ठेस न लगे । अन्त तक सरकार मज़बूर हो गई और जून 1984 के प्रथम सप्ताह में अच्छी तरह हिदायतें देने के बाद फौज की एक टुकडी सुवर्ण मन्दिर में घुस गई । भारतीय फौज ने, जिसमें हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख फौजी थे, बडी कुशलता से अपना काम पूरा किया ।[2] बहुत से बहादूर सिपाही भी आतंकवादियों की गोलियों से मारे गए । परन्तु उन्होंने सुवर्ण मन्दिर को आतंकवादियों से मुक्त कराने में सफलता प्राप्त की । इस घटना से सिक्खों के मन में सरकार के प्रति क्रोधाग्नि भडक उठी । इसके फलस्वरूप 31 अक्टूबर 1984 को इन्दिरा गाँधी की हत्या दो सिक्ख धर्मान्धों के हाथों हुई ।[3] उसके बाद श्री राजीव गान्धी प्रधान मंत्री बन गये ।

---

1. Manorama year Book- 1988 - P.175.
2. मन्मथ नाथ गुप्त - काग्रेस के सौ वर्ष - संघर्ष और सफलता का इतिहास - पृ. 209
3. मन्मथ नाथ गुप्त - काग्रेस के सौ वर्ष - संघर्ष और सफलता का इतिहास - पृ. 210

श्रीमती इन्दिरा गाँधी की हत्या से सारा देश दुख सागर में डूब गया और देश भर में सांप्रदायिक दंगे हुए । अनेक सिक्खों की हत्या हुई । अनेक इलाकों में आगजनी, लूटपाट आदि के द्वारा जनता ने हत्यारों के प्रति अपना विरोध प्रकट किया ।

1984 दिसम्बर[1] के आठवें लोकसभा चुनाव में फिर कांग्रेस पार्टी शासन में आयी और राजीव गाँधी प्रधानमंत्री बन गये । आरंभिक दिनों में श्री राजीव गान्धी की फुर्ती और सामर्थ्य से लोग प्रभावित हुए । पंजाब तथा आसाम सन्धियों के कारण उनकी सफलता अधिक बन गयी । फिर बोफोर्स, पेअर फैक्स[2] आदि के रूप में समस्यायें आने लगीं । शायद इसीलिए 1989 के नवम लोकसभा चुनाव में कांग्रेस को अधिक सीट नहीं मिली ।[3] केवल कांग्रेस को ही नहीं, किसी भी पार्टी को शासन चलाने के लिए आवश्यक वोट नहीं मिला । इसलिए बी.जे.पी, सी.पी.एम., सी.पी.आई, कांग्रेस एस आदि पार्टियों की सहायता से जनता दल शासन में आया । श्री वी.पी.सिंह प्रधानमंत्री बन गये । लेकिन वी.पी.सिंह को प्रधानमंत्री बनाने के विषय में नेताओं के बीच मतभेद था । इसी समय उत्तर भारत में पिछडे वर्ग को दिये जानेवाले आरक्षण के नाम पर निरीह बालक तक आत्माहुति करते रहे । तब प्रधान मंत्री श्री वी.पी.सिंह "मंडल-कमीशन रिपोर्ट"[4] को लेकर आगे बढे तो देश भर में हत्या-काण्ड, लूट-पाट आदि बढने लगे, देश की जनता दो विभागों में बंट गयी । इस विषय को लेकर भी मंत्रि मंडल के सदस्यों में मतभेद हो गया

---

1. मन्मथ नाथ गुप्त-कांग्रेस के सौ वर्ष-संघर्ष और सफलता का इतिहास-पृ. 21।
2. Manorama year Book-1991- P.498, 500.
3. Manorama year Book-1991- P.501
4. Manorama year Book-1993- P.480.

"राम-जन्मभूमि- बाबरी मस्जिद"[1] समस्या भी इसी समय ज़ोर पकडती आयी । इस कारण से मंत्रिमंडल के समर्थक जनता पार्टी और प्रधानमंत्री के बीच मतभेद हुआ । बी.जे.पी ने भी इस समस्या के समाधान का आग्रह प्रकट किया । लेकिन प्रधानमंत्री की ओर से इसका कोई समाधान नहीं हुआ । 1990 सितम्बर 25[2] को अड्वानी के नेतृत्व में रथयात्रा सोमनाथ से अयोध्या की राम जन्मभूमि की ओर आरंभ हुई जिससे देश भर के लोग क्रुद्ध हो गये । रोषाकुल जनता को रोकने के लिए सरकार को सेना भेजनी पडी । "करसेवा" के लिए भारत के सारे देशों से बच्चों से लेकर बूढे तक, स्त्री और पुरुष सब अयोध्या की ओर निकले । 23 अक्तूबर 1990 को बिहार के समस्तिपुर में अड्वानी गिरफ्तार किये गये । इस घटना से, पूर्व निर्णय के अनुसार भारतीय जनता पार्टी ने सरकार का अपना समर्थन वापस लिया ।[3] इससे लोकसभा के सदस्यों ने प्रधान मंत्री पर अविश्वास प्रकट किया । मंत्रिमंडल के भी कई सदस्यों ने अविश्वास प्रकट करते हुए त्यागपत्र दिये । फिर भी प्रधानमंत्री ने त्यागपत्र नहीं दिया । अन्त में लोकसभा सम्मेलन में "वोट" के द्वारा जब वे पराजित हुए तब उन्होंने इस्तीफा दिया । उस समय तक जनता दल का विभाजन हो चुका था । लोकसभा में जनता दल के जो सदस्य थे, उन लोगों ने मिलकर श्री चन्द्रशेखर को नेता बना दिया । कांग्रेस - ऐ ने भी इसका समर्थन किया । इसलिए फिर एक चुनाव की आवश्यकता नहीं हुई, श्री चन्द्रशेखर भारत के प्रधानमंत्री बने ।

ज़ाहिर है कि सन् 1947 से 1990 तक देश में अनेक सरकार आयीं । लेकिन हमारे अधिकांश नेता सत्तामोही एवं स्वार्थलोलुप थे ।

---

1. Manorama year Book- 1993- P.39

2. Manorama year Book-1993- P.40.

इसलिए इन शासकों के शासन से देश को या जनता को कोई फायदा नहीं हुआ । सारे के सारे नेता देश या जनता के लिए चिंतित न थे, बल्कि अपनी चिन्ता में डूबनेवाले थे ।

स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद सत्ता और अधिकार को प्राप्त करने की भागदौड में हमारे सुरक्षित नैतिक मूल्य, भ्रष्टाचार और स्वार्थ की आग में जलकर भस्म हो गये । भारत में राजनीति के क्षेत्र में स्वजनवाद, भ्रष्टाचार, स्वार्थ, जातिवाद, दलबदल आदि की घुसपैठ हुई । आज हमारे देश की राजनीति इतनी दूषित हो गयी है कि सत्य, ईमानदारी और त्याग जैसे मूल्य इस क्षेत्र से गायब हो गये । देश के पुराने नेताओं ने जिस पद को अलंकृत किया था, वह स्वार्थी एवं अवसरवादी लोगों के हाथ में आ गया । कई राज्यों के प्रति केन्द्र से किये जानेवाले अन्याय पूर्ण व्यवहार ने देश में प्रांतीयता, भाषाई कट्टरता आदि को भी जन्म दिया । इसलिए भी अनेक समस्याएँ पनपने लगीं ।

स्वतंत्रता प्राप्ति के इतने वर्षों के बाद भी देश की आर्थिक एवं राजनैतिक स्थिति में कोई प्रगति नहीं हुई । इसका और एक कारण, एक के बाद एक होकर आनेवाले युद्ध हैं । स्वतंत्रता प्राप्ति के कुछ ही महीनों के बाद पाकिस्तान ने कश्मीर पर आक्रमण कर दिया । पाकिस्तान के नेता कश्मीर को तो हडपना चाहते थे । पर उन्होंने चार करोड मुसलमानों से यह नहीं कहा कि तुम यहाँ आ जाओ । उन्हें मुस्लिम जनता से कोई प्रेम नहीं था, उन्हें तो साम्राज्य चाहिए था । कश्मीर महाराज की प्रार्थना

मानकर भारत ने उनकी सहायता की । आखिर कश्मीर भी भारत का अंग बन गया । राजनैतिक अशान्ति और कश्मीर युद्ध के कारण उत्पन्न अनैतिकता तथा दुख के बादल देश भर में उमड़ घुमड़ रहे थे । महंगाई, बेरोज़गारी, चोर-बाज़ारी तथा मुनाफाखोरी सर्वव्यापी हो गयी । अंग्रेज़ शासन से विरासत में प्राप्त देश के जर्जरित ढाँचे में नये रक्त और नयी चेतना संप्रेषित करने का दायित्व तत्कालीन शासकों पर आ गया ।

पंचशील समझौते के अन्तर्गत शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व के लिए वचनबद्ध होते हुए भी तत् ।962 सितम्बर ।9 को[1] चीन ने भारत पर आक्रमण शुरू किया । इस घटना से भारतीय जनमानस में निराशा, भय तथा संशय व्याप्त हुए जिससे राजनीति में भी अनेक परिवर्तन आये । रक्षामंत्री श्री वी.के.वी. कृष्ण मेनन को तत्काल ही अपने पद से हट जाना पड़ा । उस समय की राजनीतिक स्थिति के बारे में श्री देवीशंकर अवस्थी का विचार है -"चीनी आक्रमण ने देश के मानस को बदला अवश्य था । एक बार फिर से अपने संदर्भ और परिवेश को परिभाषित करने की आकांक्षा जागी थी । युद्ध के सीमित और विराट् अर्थों के द्वन्द्ववाले सन्दर्भ ने तमाम चीज़ों को उलटने पुलटने के लिए विवश किया था ।"[2] इस युद्ध के फलस्वरूप भारत के कई इलाकों को चीन ने अपना अधीन कर दिया । डॉ. सत्यनारायण सिन्हा की राय में "इस आक्रमण के पीछे केवल चीन की साम्राज्यलिप्सा ही नहीं,

---

1. Manorama year Book-1988- P.173.

2. देवी शंकर अवस्थी - लहर - जनवरी-1966 - पृ. 24

बल्कि स्वयं भारतीयों की दुर्बलता भी थी ।"[1]

चीनी आक्रमण की हानि से सँभलकर भारत फिर विकास के पथ पर आगे बढा । लेकिन सन् 1965 में पाकिस्तान ने भारत पर आक्रमण किया ।[2] इस युद्ध में रूस ने भारत की सहायता की तो अमेरिका, पाकिस्तान को आधुनिक हथियार देने के लिए तत्पर था । भारत का कुछ प्रदेश पाकिस्तान के अधिकार में आ गया । किन्तु भारत ने भी पाकिस्तान के कुछ प्रदेशों को अपना अधीन कर लिया । इस युद्ध में भारत को विजयी बनाने का श्रेय प्रधानमंत्री श्री 'लाल बहादुर शास्त्री' को मिला । सोवियट् रूस के कठिन प्रयत्न से भारत-पाक् समझौता ताशकन्द में हुआ । इसके अनुसार भारत और पाकिस्तान के बीच ऐसा फैसला हुआ कि दोनों जीते हुए प्रदेश परस्पर लौटा दें तथा कैदी लोगों को छोड दें ।

1971 में पाकिस्तान ने एक बार फिर भारत पर आक्रमण किया ।[3] इसके फलस्वरूप बँटवारे के समय का पूर्व पाकिस्तान

---

1. As deadly as the danger from China is India's internal disease. It lies in jealousy, impurity, hate and fear. These have produced division, bribery, drift and frustration. Unchecked they will lead inevitably to anarchy and division"- Dr.Satya Narayan Sinha- China Strikes. P.124.
2. Manorama year book- 1988- P.173.

बंगलादेश बन गया । बंगलादेश से आये विस्थापितों के पुनरावास की समस्या ने भयानक रूप धारण कर दिया । इसलिए देश को बडे आर्थिक संकट का भी सामना करना पडा । निरन्तर आनेवाले इन युद्धों के कारण देश की आर्थिक एवं राजनीतिक स्थिति बहुत बिगड गयी ।

देश की प्रगति एवं देशवासियों के आर्थिक विकास को लक्ष्य करके अनेक पंचवर्षीय योजनाओं का भी आयोजन सरकार ने किया । 1951 से 1990 तक के समय में कुल सात पंचवर्षीय योजनाओं का आयोजन हुआ । सारी की सारी योजनाओं का उद्देश्य - जीवन का प्रतिमान ऊँचा करना, जनता को अधिक समृद्ध व विविध प्रकार के जीवन बिताने का अवसर देना, आर्थिक विषमता को दूर करना, रहन-सहन का मान ऊँचा करना, उद्योगों की स्थापना करना, खाद्यान्न में आत्मनिर्भरता प्राप्त करना, राष्ट्रीय आय बढाना, रोज़गार में वृद्धि, ऊर्जा-उत्पादन बढाना आदि थे । लेकिन इन योजनाओं को पूर्ण करने में भी सरकार सफल नहीं हुई । यदि सरकार इसमें सफल हुई तो आज देश की यह बिगडी स्थिति नहीं होती ।

पंचवर्षीय योजनाओं के अलावा 1974-78 के समय देश की प्रगति को लक्ष्य करके बीस सूत्री कार्यक्रमों की घोषणा हुई । बेकारी, गरीबी जैसी भयानक समस्याओं का उन्मूलन इसका लक्ष्य था । लेकिन इस योजना से भी जनता की गिरी स्थिति में अधिक परिवर्तन नहीं आया । इन सारी योजनाओं के बाद भी जनता की स्थिति के बिगड जाने का एक कारण जनसंख्या की वृद्धि भी है । स्वतंत्रता के पहले भारत की जनसंख्या 1941 में

31 करोड 48 लाख थी । 1951 में जनसंख्या - 35,68,79,394 रही । लेकिन 1961 में दो आम चुनावों के बीतने के बाद हमारी संख्या बढ़ी 43,92,34,771 तक[1] । 1971 में हमारी जनसंख्या 54,69,55,945 तक पहुँच गयी तो 1991 तक आते समय हमारी संख्या 84,39,30,861 तक आ गयी ।[2] इसलिए पंचवर्षीय योजनाओं से जो कुछ लाभ हुआ, वह जनसंख्या-वृद्धि के कारण नष्ट हो गया ।

परिवेश के प्रति रचनाकार की प्रतिक्रिया

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद उपजी नई परिस्थितियाँ रचनाकार के दृष्टिकोण में नया परिवर्तन लायी । वे पुरानी परम्परा से हटकर नये मार्ग को अपनाकर, नवीन युग बोध के अनुकूल अपनी रचनाओं को प्रस्तुत करने लगे । इस युग के नाटककारों ने भी अपनी रचनाओं के द्वारा जनता के मन में राजनैतिक चेतना को उभारने की पर्याप्त कोशिश की । इस युग के जनमानस में व्याप्त पीडा, हताशा, कुण्ठा, घुटन, शोषण, संघर्ष, पराजय एवं विद्रोह की भावनाओं को व्यक्त करने के लिए उन्होंने कथ्य की विभिन्न भंगिमाओं को अपनाया । कुछ नाटककारों ने समसामयिक समस्याओं को अभिव्यक्त करने के लिए इतिहास का सहारा लिया तो कुछ ने पुराण का । कुछ नाटककारों ने समकालीन समस्याओं की सीधी अभिव्यक्ति की है तो कुछ एक ने नाटक के अंदर समसामयिक प्रसंग और पात्र से मिलता जुलता एक और नाटक प्रस्तुत किया है ।

---

1. The times of India Directory and year book 1968- P.1.
2. Malayala Manorama year Book -1993- P.381.

इतिहास को आधार बनाकर लिखे गये प्रमुख नाटक हैं "कोणार्क", "शारदीया" (जगदीश चन्द्र माथुर), "आषाढ का एक दिन" (मोहन राकेश), "आठवाँ सर्ग" (सुरेन्द्र वर्मा), "उत्तर प्रियदर्शी" (अज्ञेय), "हानूश", "कबिरा खड़ा बाज़ार में" (भीष्म साहनी), "कालजयी" (शंकर शेष) आदि । पौराणिक कथानक को आधार बनाकर समसामयिक समस्याओं को प्रस्तुत करनेवाले प्रमुख नाटक हैं - "पहला राजा" (जगदीश चन्द्र माथुर), "अन्धा युग" (धर्मवीर भारती) "एक कंठ विष पाई" (दुष्यन्त कुमार), "नरसिंह कथा", "कलंकी", "सूर्यमुख" (लक्ष्मी नारायण लाल), "कथा एक कंस की" (दयाप्रकाश सिन्हा), "प्रजा ही रहने दो" (गिरिराज किशोर), "अरे मायावी सरोवर", "कोमल गान्धार", (शंकर शेष), "माधवी" (भीष्म साहनी), "भूमिजा" (सर्वदानन्द), आदि । समकालीन प्रसंग एवं पात्र को अपनानेवाले प्रमुख नाटक हैं - "बकरी", "अब गरीबी हटाओ", "लड़ाई" (सर्वेश्वर दयाल सक्सेना), "सिंहासन खाली है", "नागपाश", "आज नहीं तो कल" (सुशील कुमार सिंह), "शुतुरमुर्ग" (ज्ञानदेव अग्निहोत्री), "रोशनी एक नदी है" (लक्ष्मीकांत वर्मा), "रसगंधर्व" (मणिमधुकर), "इतिहास चक्र" (दयाप्रकाश सिन्हा) "मरजीवा", "आला अफ़सर" (मुद्राराक्षस), "रक्तकमल", अब्दुल्ला दीवाना", (लक्ष्मी नारायण लाल), "युद्धमन", "त्रिशंकु" (बृजमोहन शाह) "टूटते परिवेश" (विष्णु प्रभाकर) आदि । शंकर शेष का "एक और द्रोणाचार्य" नरेन्द्र कोहली का "शम्बूक की हत्या" आदि में नाटक के अन्दर और एक नाटक के ज़रिए सामयिक समस्याओं का चित्रण हुआ है । लाल ने भी अपने नाटक "मि. अभिमन्यु" तथा "एक सत्य हरिश्चन्द्र" में इस रीति को अपनाया है ।

राजनीतिक चेतना - ऐतिहासिक सन्दर्भ में

कोणार्क

स्वातंत्र्योत्तर कालखण्ड के ख्यातिप्राप्त नाटककार श्री माथुर का मशहूर ऐतिहासिक नाटक है "कोणार्क" । उड़ीसा के भुवनेश्वर में जीर्णावस्था में स्थित सूर्य मन्दिर कोणार्क के निर्माण तथा विध्वंस की कहानी ही इस नाटक में प्रस्तुत की गई है । नाटककार ने अल्पमात्रा में ही इतिहास का सहारा लिया है । शेष सारी घटनाएँ कलाकार की कल्पना की उपज है । कलाकार का चिरन्तन मौन जो उसका अभिशाप है, उसे ही इसमें नाटककार ने वाणी दी है । इसमें उन्होंने कलाकार के आत्मसंघर्ष एवं अन्याय का विरोध करनेवाली उसकी ओजस्विता का मार्मिक चित्रण किया है । विशु तथा धर्मपद के रूप में कलाकार की दो पीढ़ियों का निरूपण हुआ है । विशु चुनौतियों से भागनेवाले, अन्यायों को चुपचाप सहनेवाले, आत्मकेन्द्रित व्यक्ति है तो धर्मपद अन्यायों से जूझनेवाले, अन्यायी को खत्म करने के लिए आत्मबलि देनेवाले विद्रोही कलाकार है ।

शारदीया

1795 में मराठा और हैदराबाद के निजाम के बीच होनेवाले खर्दा युद्ध और उसके परिणामों को लेकर लिखा गया नाटक है "शारदीया" । इसमें भी इतिहास केवल एक आधार है जिसके द्वारा कलाकार और उसके संघर्ष का चित्रण हुआ है । किलेदार की पुत्री से शादी करने के लिए जब नरसिंहराव धन कमाकर आता है तो उस कलाकार का हृदय उसे

मराठा जाति के प्रति अपने कर्तव्य को निभाने के लिए पुकारता है और खर्दा के युद्ध में देश की रक्षा के लिए वह चला जाता है । इसी बीच बाइजाबाई के पिता सर्जेराव, सिंधिया महाराज से बेटी की शादी करवाकर उसे अपनी महत्वाकांक्षा की पूर्ति का साधन बनाता है । एक ओर तो वह नरसिंह राव को बन्दी बना लेता है तो दूसरी ओर अपनी बेटी के बदले में राज्याधिकार भी हस्तगत कर देता है । इसके माध्यम से नाटककार ने यह भी सिद्ध कर दिया है कि आज राजनीति के कुचक्र से नारी भी अपने अस्तित्व की रक्षा नहीं कर सकती ।

आषाढ का एक दिन

श्री मोहन राकेश के इस नाटक की रचना महाकवि कालिदास के चरित्र को केन्द्र बनाकर हुई है । नाटक के प्रथम अंक में कवि कालिदास की रचना-यात्रा का आरंभ दिखाया है । उनकी रचना का आरंभ "ऋतु-संहार" से, अपने ही गाँव में हुआ । उसकी प्रेमिका मल्लिका, उसके भविष्य को उज्ज्वल होते देखना चाहती है । वह जानती है कि गाँव में उसकी प्रतिभा का विकास नहीं होता । इसलिए जब कालिदास राजकवि का पद स्वीकार करने से हिचकता है तो वह उसे राजधानी जाने को बाध्य कर देती है । उज्जयिनी जाकर, वह प्रियंगुमंजरी का पति बन जाता है । लेकिन राजनीति के कुचक्र में वह पराजित हो जाता है और अन्त में टूटा हारा अपना गाँव लौट आता है । क्योंकि उस समय भी उसके मन में अपनी ज़मीन से जुड़ने की चाह थी । लेकिन उस समय तक मल्लिका की ज़िन्दगी भी बदल चुकी थी । वह अनचाहे पुरुष विलोम की पत्नी तथा एक बच्ची की माँ भी बन चुकी थी ।

आठवाँ सर्ग

प्रगतिशील नाटककार श्री सुरेन्द्र वर्मा का ऐतिहासिक नाटक है "आठवाँ सर्ग" । महाकवि कालिदास के "कुमार संभव" के आठवें सर्ग को आधार बनाकर यह नाटक लिखा गया है । इसमें लेखक की अभिव्यक्ति-स्वतंत्रता की समस्या की चर्चा की गई है, साथ ही साथ राज्याश्रय की समस्या तथा शासन की टकराहट को भी चित्रित किया है । नाटककार ने इसमें व्यवस्था और कवि के अन्तर्द्वन्द्व के माध्यम से कवि की उदात्तता एवं गरिमा को प्रस्तुत किया है । जब सत्ता, कालिदास की रचना पर रोक लगा देती है तब कवि सत्ता से समझौता करके "कुमारसम्भव" के आपत्तिजनक अंशों को काव्य से निकालने को तैयार नहीं होता । उनका विचार है कि शिव-पार्वती मनुष्य के सौन्दर्य और राग की भावनाओं के प्रतिरूप है । इसलिए सत्ता द्वारा अपनी रचना पर प्रतिबंध लगाने पर भी उसकी रचना-शीलता पराजित नहीं होती, वह और भी उत्कृष्ट रचनाएँ करती रहती है । कालिदास को मालूम हो गया कि उसके कृतित्व और कवि व्यक्तित्व को अब सत्ता के सहारे की आवश्यकता नहीं है ।

उत्तर प्रियदर्शी

कवि अज्ञेय का लघु गीति-नाट्य है "उत्तर प्रियदर्शी" । इसमें नाटककार ने कथावस्तु को ऐतिहासिक आधार देने के लिए आरंभ में "प्रेरणा" और "अशोक के नरक की कथा" दो वृत्त संकेत दिया है । पाँचवीं शती के चीनी यात्री फाह्यान के विवरण के आधार पर "प्रेरणा" में कहा गया है कि अशोक ने शत्रुओं को दंड देने के लिए नरक का निर्माण किया ।

लेकिन एक दिन वह स्वयं इस नरक की यातना सहने को विवश हो जाता है । नाटक की कथावस्तु का सूक्ष्म-विवेचन "अशोक के नरक की कथा" में हुआ है । बालक अशोक और बुद्ध के प्रथम मिलन में अशोक एक मुट्ठी धूल उनके भिक्षा-पात्र में डाल देता है । अबोध बालक के इस दान से खुश होकर बुद्ध उसमें धरती के भावी सम्राट होने की शक्ति भर देते हैं । इसके अनुसार वह राजा बना और आगे चलकर उसने एक नरक का निर्माण भी किया । नरक के शासक को उसने यह अधिकार भी दिया कि उसके शासन क्षेत्र में यदि वह भी कभी आ जाय तो उसी प्रकार की यातनाएँ उसे भी देनी है । नरक की यातनाओं से दुखी होकर एक भिक्षु एक दिन उसकी सीमा में आता है तो उसे भी नरक यातना देने का प्रयत्न करता है । लेकिन यह प्रयत्न निष्फल हो जाता है । नरक के शासन की इस असफलता पर, उस भिक्षु के दर्शन के लिए सम्राट स्वयं जाते हैं और भिक्षु के धर्मोपदेश से उन्हें मुक्ति मिलती है ।

हानूश

श्री भीष्म साहनी ने इतिहास से थोडी सामग्री लेकर एक विदेशी परिवेश में हानूश नाटक की रचना की । श्री गिरीश रस्तोगी की राय में "1960 के आसपास चेकोस्लोवाकिया की राजधानी प्राग में पुराने गिरजे, मध्ययुगीन वातावरण तथा एक पुरानी मीनार घड़ी को देखकर उसका इतिहास और वहाँ के बादशाह द्वारा उस घडी के निर्माण को दिये गये विलक्षण पुरस्कार की कहानी सुनकर जो अमिट प्रभाव साहनी के मन-मस्तिष्क पर पडा, उसी ने इस नाटक को यह रचनात्मक स्वरूप दिया ।"

---

1. गिरीश रस्तोगी - समकालीन हिन्दी नाटककार - पृ. 98

इसमें लेखक का उद्देश्य घड़ी की विलक्षणता और उसके आविष्कार की लंबी कहानी बताना मात्र नहीं है, बल्कि इसके माध्यम से एक कलाकार के संघर्ष को भी वाणी दी है । इसमें "हानूश" के माध्यम से भीष्म साहनी ने एक ओर कलाकार की दुर्दमनीय सिसृच्छा और उसकी निराहता को रूपायित किया है तो दूसरी ओर धर्म एवं सत्ता के गठबन्धन के साथ सामाजिक शक्तियों के संघर्ष की मार्मिक अभिव्यक्ति दी है ।[1] नाटक में व्यवस्था की कूटनीति, क्रूरता तथा स्वार्थपरता की भी यथार्थ अभिव्यक्ति हुई है ।

कबिरा खड़ा बाज़ार में

श्री भीष्म साहनी का नाटक "कबिरा खड़ा बाज़ार में" कबीरदास की ज़िन्दगी को आधार बनाकर लिखा गया है । कबीर की मृत्यु के इतने वर्षों के बाद, आज भी भारतीयों की ज़ुबान पर उनकी वाणी गूँजती है । उनके विषय में अनेक कहानियाँ भी लोकावश्रुत हैं । इसका कारण यह है कि कबीर के बेपरवाह, दृढ़ तथा उग्र व्यक्तित्व ने भारतीयों के मन और मस्तिष्क को बहुत प्रभावित किया है । कबीर ने अपने युग की तानाशाही धर्मान्धता, बाह्याचार और मिथ्या धारणाओं के विरुद्ध संघर्ष किया था । कबीर की फक्कड़ाना मस्ती, निर्मम अक्खड़ता एवं युग प्रवर्तक विचार धारा का यथार्थ चित्रण इसमें नाटककार ने किया है । इसके माध्यम से नाटककार ने यह भी व्यक्त किया है कि उनका साहित्य भी सामाजिक जड़ता को तोड़ने का एक माध्यम था ।

---

1. भीष्म साहनी - हानूश - भूमिका

कालजयी

इसमें श्री शंकर शेष ने ऐतिहासिक कथानक के द्वारा राजनीतिक संघर्ष की व्याख्या की है । "काल" को अपनी मुट्ठी में बन्द करनेवाला ही "कालजयी" है । निरंकुश एवं क्रूर राजा "कालजयी" के चित्रण से नाटककार ने राजतंत्र तथा प्रजातंत्र के संघर्ष का चित्र उपस्थित किया है । अपने तारुण्य की चिन्ता में लीन राजा कालजयी प्रजा का पालक नहीं । वह दमन-नीति से राजकारोबार चलाता है । सत्ता-मद में पागल तथा राजसी वैभव में मस्त राजा कालजयी प्रजा के प्रति अपने दायित्व को नहीं निभाता । इसलिए प्रजा उसका विरोध करके प्रजा तंत्र की मांग करती है ।

समकालीन राजनीतिक खोखलेपन की अभिव्यक्ति - पौराणिक प्रसंगों के वातायन से

पहला राजा

जगदीश चन्द्र माथुर का नाटक "पहला राजा" पौराणिक सन्दर्भ में आधुनिक युग-बोध का एक मार्मिक चित्र उपस्थित करता है । इसमें नाटककार ने आदि राजा पृथु के जीवन की विभिन्न घटनाओं के द्वारा स्वातंत्र्योत्तर भारत की विषमतापूर्ण राजनीति, उसमें उलझे हुए पंडित जवाहर लाल नेहरू की असफलताओं और उनकी योजनाओं की असफलता के प्रणेता मंत्रियों की कूटनीति पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया है । श्री नर नारायण राय की राय में "जगदीश चन्द्र माथुर का "पहला राजा" एक ओर जहाँ सामाजिक व्यवस्था में शासन तंत्र के उदय और विकास की कथा है वहीं

दूसरी ओर पौराणिक कथा की नयी व्याख्या भी और वर्तमान के विद्रूप को व्यंग्य से प्रस्तुत करने का प्रयास भी ।"[1] इसमें पृथु के चरित्र का निर्माण महाभारत, पुराणों तथा शतपथ ब्राह्मण से प्राप्त संकेतों के आधार पर किया है । इसमें महाराज पृथु के कर्मठ तथा प्रजावत्सल चरित्र का निर्माण करके, स्वातंत्र्योत्तर भारत की स्थिति तथा जवाहर लाल नेहरू के उज्ज्वल नेतृत्व से उसे जोड़ दिया है ।

अन्धा युग

महाभारतोत्तर पृष्ठभूमि के आधार पर सामयिक जीवन की युद्ध विभीषिका को पद्यात्मक शैली में प्रस्तुत करनेवाला नाटक है धर्मवीर भारती का "अन्धा युग" । सन् 1954-1955 के आसपास सामान्य शिक्षित भारतीय का मानसिक विघटन शुरू हो गया था । स्वातंत्र्योत्तर भारत की विषम परिस्थितियों ने व्यक्ति को सामाजिक और वैयक्तिक स्तर पर विघटित किया । दूसरे महायुद्ध ने विश्व के अधिकांश देशों में व्यक्ति की स्थापित मान्यताओं को पराशायी कर दिया, आस्था और विश्वास को वंचना सिद्ध किया और परमाणु के आतंक ने व्यक्ति को अस्तित्व-संकट से भयभीत कर दिया । डॉ. भारती का यह पद्य-नाटक इन्हीं परिस्थितियों का प्रतिबिंब है, जिसमें महाभारत के अन्धे युग की युद्धोत्तर पृष्ठभूमि को आधार बनाया गया है ।"[2] महाभारत युद्ध के अन्तिम दिन के विषादपूर्ण

---

1. नरनारायण राय - आधुनिक हिन्दी नाटक - एक यात्रा दशक:
2. डॉ. (श्रीमती) रीता कुमार - स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक मोहन राकेश के विशेष सन्दर्भ में - पृ. 28-29

वातावरण से कृष्ण की मृत्यु तक की घटनाएँ इस नाटक में वर्णित है,। महाभारतोत्त घटनाओं का विष आज भी संशय, स्वार्थ, मूल्य-विघटन, अन्धकारमय भविष्य आदि के रूप में समाज में व्याप्त है । इस संदर्भ में डॉ. सत्यवती त्रिपाठी का विचार बिलकुल सही लगता है - "रक्तपात, स्वार्थान्धता और हिंसता की स्थितियाँ आधुनिक समाज को बुरी तरह जकडे हुए हैं । वर्तमान जीवन में घोर निराशा और अनास्था ने जगह ले रखी है । दूसरे महायुद्ध के बाद तीसरे महायुद्ध की संभावनाएँ नज़र आने लगी हैं । इस विषम-स्थिति में "अन्धा-युग" त्रस्त मानवता को एक चेतावनी है । नाटककार बीसवीं शती के युद्धों की विभीषिका से परिचित है, इसलिए वह संभाव्य महायुद्ध के संकट को याद दिलाने की चेष्टा करता है ।"[1] इस नाटक में संजय, धृतराष्ट्र, युधिष्ठिर, कृष्ण, अश्वत्थामा सब पात्र आधुनिक मनःस्थितियों के प्रतिनिधि बनकर आये हैं ।

एक कण्ठ विषपायी

"अन्धा युग" नाटक की ही परम्परा में आनेवाला एक नाटक है श्री दुष्यन्त कुमार का "एक कण्ठ विष पायी" । इसमें भी युद्ध की भयानकता तथा मानव मूल्यों के संकट का चित्रण हुआ है । नाटककार ने इसमें शिव के द्वारा दक्ष-यज्ञ के विध्वंस और उसके कारण देवताओं और उनके बीच होनेवाले युद्ध का चित्रण किया है । इसमें शिव का चित्रण परम्पराओं से विद्रोह करनेवाले व्यक्ति के रूप में किया है । सती की लाश को कंधे पर उठाये हुए शिव के चित्र द्वारा नाटककार ने मृत परम्पराओं के शव को ढोनेवाले आधुनिक मनुष्य का चित्र खींचा है । वह भी शिव की तरह दुविधा

---

1. डॉ. सत्यवती त्रिपाठी - आधुनिक हिन्दी नाटकों में प्रयोगधर्मिता -पृ. 45

ग्रस्त द्वन्द्व की स्थिति में है । "पुरातन का मोह उससे छूट नहीं रहा और नये का वरण वह नहीं कर पा रहा । शंकर की भाँति उसे भी किसी सत्य से जुड़े रहने और टूट जाने का दुविधायुत भ्रम है ।"[1] निरंकुश सत्ता के दबाव में पीड़ा और दुःख झेलती प्रजा के रूप में इस नाटक में सर्वहत का चित्रण हुआ है । नाटक की कथा शंकर और विष्णु के माध्यम से नये मूल्यबोध से जुड़ने की कथा है ।

नरसिंहकथा

श्री लक्ष्मीनारायण लाल का यह नाटक एक पौराणिक कथा पर आधारित है जो समकालीन सन्दर्भों को बेहद तीक्ष्णता और सामयिकता के साथ उभारता है । आपात्काल के समय लाल जैसे जागृत साहित्यकार को अनेक यातनाएँ सहनी पड़ी । नाटककार को लगा कि हिरण्य कश्यप जैसे निरंकुश तानाशाह का उदय केवल उस युग में ही नहीं, बल्कि वह हर युग में पैदा होता रहा है और उसके साथ प्रह्लाद भी जन्म लेते रहे हैं । पुराण कथा और घटनाओं तथा पुराण के चरित्र को हम फिर से भोग रहे हैं - अपने समय में, अपने अर्थों में ।

कलंकी

हिन्दू मिथक के आधार पर रचित "कलंकी" नाटक में लक्ष्मीनारायण लाल यथार्थ और युगबोध की व्याख्या करते हैं । इसमें मध्यकालीन एवं आधुनिक जीवन को आमने-सामने रख दिया है । नाटक की कथा मध्यकालीन होकर भी आधुनिक है, क्योंकि "कल्कि अवतार" की योजना

---

1. दुष्यन्त कुमार - एक कण्ठ विष पायी - पृ. 96

हर युग में जीवित रही है । अपनी निरंकुश सत्ता को आगे बढ़ाने के लिए शासकों को तन्त्र का सहारा लेना पड़ता है । यह तन्त्र हमेशा व्यक्ति की चेतना, शक्ति, विवेक तथा स्वतन्त्रता को धार्मिक कर्मकाण्डों की सहायता से दबा देता है । इसलिए ही इस नाटक के पात्रों को आज भी हम अपने समाज में देख सकते हैं ।

निरंकुश सामन्त अकुलक्षेम का पुत्र हेरूप ही अपने पिता के शासन का विरोध करता है । राजा, धर्म की आड़ लेकर जब जनता को मूक बनाकर मनमाना शासन चलाता है तो जनता चुपचाप सब कुछ सह लेती है । लेकिन हेरूप सर्वप्रथम राजा के कार्यों के सद्-असद् पक्ष पर प्रश्न करता है । वह शव-साधना को धिक्कार कर मनुष्य की साधना करने का उपदेश देता है ।

सूर्यमुख

लक्ष्मीनारायण लाल का "सूर्यमुख" पुराण कथा के सन्दर्भ में आधुनिक युगबोध की एक सशक्त नाट्यरचना है । इस नाटक में कृष्ण-पुत्र प्रद्युम्न और कृष्ण की अन्तिम पत्नी वेनुरती का प्रेम दर्शाया गया है । इसमें उसी युग के चरित्रों के पारस्परिक जटिल सम्बन्धों तथा गहरे अंतर्द्वन्द्व को वर्तमान युग का संस्पर्श देकर मानवीय धरातल पर प्रस्तुत किया है । यद्यपि पौराणिक कथा को आधार बनाकर इस नाटक की रचना हुई, फिर भी कुछ चरित्रों एवं प्रसंगों का चयन नाटककार ने स्वतंत्रता से किया है । इसमें उन्होंने समस्त युग के विघटन, संघर्ष तथा कृष्ण की मृत्यु के बाद उनके उत्तराधिकारियों में सत्ता के संघर्ष, स्वार्थ की राजनीति आदि सभी

का चित्रण किया है । स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद देश में उच्चवर्ग और निम्नवर्ग के बीच जो आपसी वैमनस्य तथा संघर्ष हुए उन्हें पौराणिक प्रसंग की आड में उभारना लाल का लक्ष्य है ।

कथा एक कंस की

श्री दयाप्रकाश सिन्हा ने अपने नाटक "कथा एक कंस की" में निरंकुश सत्ताधारियों के मनोविज्ञान का चित्रण कंस के माध्यम से किया है । नाटक की भूमिका में स्वयं नाटककार ने यह व्यक्त किया है "वास्तव में यह नाटक अपने आप में एक अन्वेषण है, तानाशाही तन्त्र का अन्वेषण; यह नाटक केवल पौराणिक कंस की कथा ही नहीं है । कंस के माध्यम से इतिहास की उस घटना को पहचानने की कोशिश की गई है जिसके द्वारा स्वेच्छाचारी शासक समय-समय पर मंच पर आते रहते हैं । ऐसे अनेक कंसों में से एक कंस की यह कथा अनेकों के परिप्रेक्ष्य में है ।"[1] इसमें नाटककार ने निरंकुश एवं क्रूर शासक को जन्म देनेवाली सामाजिक, पारिवारिक एवं नैतिक परिस्थितियों का सजीव चित्र प्रस्तुत किया है । कंस बचपन से ही अत्यन्त कोमल स्वभाववाला तथा संगीतप्रेमी था । संगीत एवं सौन्दर्य के प्रति प्रेम के कारण उसे बचपन में ही कई बार पिता की क्रोधाग्नि का सामना करना पडा; डाँट एवं परिहास भी सुनना पडा । पिता के प्रति प्रतिशोध की भावना ने उसके चरित्र में परिवर्तन कर डाला । अपने भीतर के अँधेरे से वह डरता रहा, निरन्तर दु:स्वप्न देखता रहा । बचपन में पिता के क्रूर व्यवहार तथा उपहास के कारण उसके मन में यह विश्वास रूढ़मूल हो गया है

---

1. दयाप्रकाश सिन्हा - कथा एक कंस की - भूमिका

कि क्रूरता ही पुरुषत्व का लक्षण है । इस प्रकार अपनी सहृदयता एवं कोमलता का त्याग करके वह निरंकुश एवं क्रूर बन जाता है । अपने सहायकों एवं विश्वासपात्रों को भी वह सन्देह की दृष्टि से देखता है । इसलिए वह अपनी प्रेमिका स्वाति को सेनापति प्रद्योत से शादी करने को भी विवश कर देता है । क्योंकि कंस का विचार है कि यदि स्वाति का विवाह प्रद्योत से हो जाय तो प्रद्योत के संबंध में गुप्त सूचनाएँ स्वाति उसे पहुँचाती रहेगी । वह अपने आप पर ईश्वरत्व का आरोप करके जनता से अपनी पूजा भी करवाता है । श्री गिरीश रस्तोगी के मत में "मनोवैज्ञानिक दृष्टि से प्रेम, स्नेह, आत्मीयता का अभाव उसे और अधिक क्रूर, असन्तुष्ट, भयानक और मानवीय संवेदना से शून्य बनाता चला जाता है । कंस के इस रूप को चित्रित करने के लिए नाटककार ने कई पौराणिक सन्दर्भों को अनुमान के आधार पर समसामयिक सन्दर्भों और प्रबुद्ध वर्ग की कल्पना, समझ और बुद्धि से जोडा है ।..... मूलत: यह नाटक कंस का–किसी भी स्वेच्छाचारी शासक की महत्वाकांक्षा और उसमें निहित कमजोरी का, उसमें मौजूद सामान्य मानव के गुण-दोषों का नाटक है ।"[1]

प्रजा ही रहने दो

श्री गिरिराज किशोर ने इस नाटक में यह सिद्ध कर दिया है कि जन्मजात अन्ध धृतराष्ट्र और दृष्टि रखकर भी जीवनपर्यन्त अन्धेपन का व्रत निभानेवाली महारानी गान्धारी की तरह के शासक केवल उस युग में ही नहीं बल्कि उस युग के बाद भी कहीं न कहीं दिखाई पडते हैं ।

अरे मायावी सरोवर

"नौटंकी शैली में लिखे इस नाटक की कथा में पुराण,

---

1. गिरीश रस्तोगी – समकालीन हिन्दी नाटककार – पृ.212

इतिहास आदि के साथ वर्तमान का भी समन्वय है ।"[1] स्त्री-पुरुष संबन्धों का विश्लेषण करनेवाले इस नाटक में भारत की वर्तमान राजनीति पर करारी चोट की है । चेतना नगर के भ्रष्टाचारी शासक इल्चलू की उन सारी भ्रष्टाचारपूर्ण प्रवृत्तियों का पर्दाफाश नाटक में हुआ है जिसके कारण प्रजा दुखी है ।

कोमल गांधार

श्री शंकर शेष ने "कोमल गांधार" नाटक के लिए कुलवधू गांधारी के जीवन-संघर्ष को आधार बनाया है । इसमें आँखों के होकर भी दुनिया को न देखने की प्रतिज्ञा लेकर गान्धारी जीवन के प्रति अपना तीखा प्रतिशोध दिखाती है । नाटककार ने इसमें पौराणिक चरित्र गांधारी को नूतन आयाम से प्रस्तुत करके स्त्री के अस्तित्व को भी छीननेवाले आज के स्वार्थी राजनीतिज्ञों पर तीखा व्यंग्य किया है ।

माधवी

श्री भीष्म साहनी द्वारा रचित यह नाटक महाभारत की कथा पर आधारित है । ऋषि विश्वामित्र का शिष्य गालव गुरुदक्षिणा देने का हठ करता है तो उसके हठ से क्रुद्ध होकर गुरु आठ सौ अश्वमेधी घोडे मांग लेते हैं । अश्वमेधी घोडों की खोज में भडकते गालव अन्त में राजा ययाति के आश्रम में पहुँचता है । ययाति उसकी प्रतिज्ञा सुनकर दैवी गुणों से युक्त

---

1. सुनील कुमार लवटे - शंकर शेष के नाटक - पृ. 60

अपनी बेटी माधवी को उसे सौंप देते हैं और कहते हैं - जहाँ कहीं किसी भी राजा के पास आठ सौ अश्वमेधी घोड़े मिलें, उनके बदले वह माधवी को राजा के पास छोड़ दें । क्योंकि माधवी के गर्भ से उत्पन्न बालक, चक्रवर्ती बालक बनेगा । यहीं से माधवी की यातनाएँ शुरू होती है । उसके जीवन की मर्मस्पर्शी घटनाओं के चित्रण द्वारा नाटककार इस तथ्य की ओर भी संकेत करता है कि राजनीति के कुचक्र में नारी अपनी अस्मिता कैसे खो जाती है ।

भूमिजा

श्री सर्वदानन्द ने "भूमिजा" में सीता परित्याग की एक नयी व्याख्या देते हुए यह सिद्ध किया है कि आज के राजनीतिज्ञ तथा शासक अपनी स्वार्थता एवं पदलोलुपता के कारण नारी के अस्तित्व को भी कुचल देते हैं । इसमें नाटककार ने सीता के प्रति दर्शकों के मन में करुणा की भावना उत्पन्न करने का सफल प्रयास किया है । भवभूति ने "उत्तररामचरित" के अन्त में राम और सीता को प्रत्यक्ष लाकर तटस्थता ग्रहण कर ली है । लेकिन नाटककार सर्वदानन्द यह पसन्द नहीं करता क्योंकि उनके अनुसार नारी का आत्मसम्मान और गौरव भी महत्वपूर्ण बातें हैं ।

प्रदूषित राजनीति - समसामयिक प्रसंग और पात्रों के ज़रिए

बकरी

श्री सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने "बकरी" नाटक में अपनी यह राय व्यक्त की है कि विदेशी दासता से मुक्ति भारत की गरीब जनता के लिए अपने नेताओं द्वारा छले जाने की शुरूआत थी । इसमें नाटककार ने

स्वातंत्र्योत्तर भारत की शोषित जनता का बड़ा ही सजीव चित्र खींचा है । स्वतंत्रता के बाद का प्रजातन्त्र-शासन हर प्रकार से जनता का शोषण करता रहा । यहाँ तक कि उन शासकों ने गान्धीजी की नीतियों की आड में भी साधारण जनता का शोषण किया । इस नाटक में नाटककार ने गाँव की एक गरीब औरत के शोषण की कथा के माध्यम से उन शोषक तथा सत्तामोही शासकों की वास्तविकता पर तीखा प्रहार किया है ।

अब गरीबी हटाओ

सक्सेना जी का यह नाटक भी शोषित जनता के समर्थन का नाटक है । इसकी कथावस्तु देश की गरीबी की समस्या पर आधारित है । प्राचीन काल से आज तक देश की महान समस्या है 'गरीबी' । स्वतंत्रता के कई वर्ष बीत जाने पर भी, कई शासकों के आने पर भी इस समस्या का हल न हो सका । इस गरीबी को हटाने के लिए गरीब को ही इसके विरुद्ध लड़ना चाहिए । इस नाटक में नाटककार ने इस सत्य का पर्दाफाश किया है । इसमें उन्होंने अन्याय तथा गरीबी के विरुद्ध जनता की चेतना को उभारने का काम जनता पर ही छोड़ दिया है ।

लड़ाई

इस नाटक में श्री सक्सेना जी ने इस कटु सत्य की ओर संकेत किया है कि स्वतंत्रता के बाद आज भी हमारी लड़ाई ज़ारी है । लेकिन आज हम अपने स्वार्थों से प्रेरित होकर अकेले लड़ रहे हैं । इसलिए हमारी लड़ाई में शक्ति नहीं है । इस स्वार्थता के कारण हमारी शक्ति बिखर रही है । हमारा सामाजिक तथा राजनैतिक वातावरण ही इसके

मूल में काम कर रहा है । नाटककार की राय में "इस ट्रेजेडी को अनुभव करना संगठित प्रयास की ओर बढ़ना है ।"[1] नाटक का केन्द्रीय पात्र सत्यव्रत, समाज में व्याप्त भ्रष्टाचारों से ऊबकर इसका विरोध करता रहता है । लेकिन उसकी लड़ाई "अकेली" होने के कारण पराजित हो जाती है । इसलिए सत्यव्रत की कहानी के माध्यम से नाटककार ने आम जनता में संगठन की अनिवार्यता पर बल दिया है ।

सिंहासन खाली है

यह श्री सुशील कुमार सिंह का राजनैतिक व्यंग्य नाटक है । इसमें नाटककार ने वर्तमान राजनैतिक परिस्थितियों पर व्यंग्य करने के साथ-साथ आज के राजनीतिज्ञों के "सत्तामोह", "भ्रष्टाचार", "षड्यन्त्र", "चुनाव प्रचार के हथकण्डे" आदि पर भी करारी चोट की है । नाटककार ने इसमें सामाजिक समस्याएँ जैसे -राशन की समस्या, गिरहकट की समस्या, बिजली-पानी की समस्या - आदि की ओर भी संकेत किया है । नाटक का प्रारंभ ही सूत्रधार के द्वारा, सिंहासन की रक्षा के लिए एक सुपात्र की खोज से होता है । शोषक एवं अहितकारी शासक से शोभित होने के कारण आज सिंहासन खाली हो गया है । जब तक कोई सुपात्र उसे ग्रहण न करेगा तब तक वह खाली ही रहेगा । आज की गरीब-पीड़ित जनता को खोखले नारे तथा झूठे आश्वासनों के स्वप्न महल नहीं चाहिए, बल्कि उन्हें सीधी-सादी ज़िन्दगी देने योग्य एक अच्छे शासक की ज़रूरत है । इसमें नाटककार ने इस सत्य की ओर दर्शकों का ध्यान आकृष्ट कराया है ।

---

1. सक्सेना - लड़ाई - भूमिका

नागपाश

इस नाटक में श्री सुशील कुमारसिंह ने चारों तरफ़ व्याप्त सामाजिक - राजनैतिक कुचक्रों तथा झूठी व्यवस्था रूपी ज़हरीले नागपाश में फँसे हुए जनवर्ग की दयनीय स्थिति को दिखाया है । प्रतीक शैली का यह नाटक आपात्काल की छाया में लिखा गया है । इसलिए आपात्कालीन भयानक स्थितियाँ भी इसमें चित्रित हैं । शासन की कई करवटें बदलने के बाद भी अब तक जनता का कोई कल्याण नहीं हुआ है, बल्कि उनकी स्थिति और भी बिगड़ गयी है । आज के स्वार्थी शासक अनैतिक मार्ग से सत्ता हडपने के बाद, उसका दुरूपयोग ही करते हैं । उन सत्ताधारियों के विरुद्ध इसमें नाटककार ने आवाज़ उठाई है ।

आज नहीं तो कल

श्री सुशीलकुमार सिंह ने इस नाटक में "सब्जियों के काल्पनिक नामों द्वारा वस्तुत: जनता पार्टी के पाँच प्रमुख सत्ताधीशों के व्यवहार की आलोचना की है ।"[1] इसमें नाटककार की मान्यता तो यही है कि तीस वर्ष तक स्वतंत्र भारत में काँग्रेस का शासन था । लेकिन उससे देश या देशवासी लाभान्वित नहीं हुए । उसके बाद जनता पार्टी जब शासन में आयी तो जनता के मन में भी यह आशा जागी कि अब उनकी बिगड़ी स्थिति में कुछ परिवर्तन अवश्य आयेगा । लेकिन इनका कार्य भी केवल जाँच आयोग की नियुक्ति तथा हवाई दौरे तक ही सीमित था । देश में अन्याय तथा

---

1. मंजुला दास - साठोत्तर हिन्दी नाटक में त्रासद - तत्व - पृ. 109

भ्रष्टाचार और भी बढ़ गये । नाटककार इसमें संपूर्ण भारत की भ्रष्ट राजनीतिक व्यवस्था पर व्यंग्य करने में सफल हुए हैं ।

शुतुरमुर्ग

इस नाटक में श्री ज्ञानदेव अग्निहोत्री ने स्वातंत्र्योत्तर भारत की पूरी राजनैतिक तथा सामाजिक स्थिति का चित्र अत्यन्त मौलिक एवं रचनात्मक ढंग से प्रस्तुत किया है । कटु सत्य और यथार्थ का सामना न करके उससे पलायन करने की मनुष्य की प्रवृत्ति का प्रतीक है "शुतुरमुर्ग" । शासन तन्त्र के लिए यह शुतुरमुर्गी प्रवृत्ति सहायक बन जाती है । इसी प्रवृत्ति से युक्त नाटक का राजा सुनहरे भविष्य की आशा देकर, जनता को धोखा देकर अपने सिंहासन को सुरक्षित रखना चाहता है । आज हमारे देश के शासक भी इसी प्रकार झूठे वादे देकर जनता को धोखा देते हैं । इस प्रकार इसमें नाटककार ने सामयिक राजनीति पर कटु व्यंग्य भी किया है । श्रीमती रीता कुमार की राय में "शुतुरमुर्ग के निर्माण की योजना, जनता का उग्र प्रदर्शन, जननेता घिरोधीलाल का सत्ता से मिलकर सुबोधीलाल बनना, अन्ततः शुतुरमुर्ग के न बनने और मंत्रियों के छल का रहस्योद्घाटन, मामूलीराम के रूप में जनता का नागपाश से बद्ध कर दमन करना तथा राजा का निर्वासन - वर्तमान राजनीति का प्रतीक चित्रण है, जहाँ शुतुरमुर्गी नीति अपनाकर अपनी सत्ता को सुरक्षित रखते हुए व्यापक पैमाने पर शोषण हो रहा है ।"[1]

---

1. डॉ. (श्रीमती) रीता कुमार - स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक मोहन राकेश के विशेष संदर्भ में - पृ. 57

रोशनी एक नदी है

इसमें नाटककार श्री लक्ष्मीकांत वर्मा ने सामयिक युग के प्रश्नों और समस्याओं का पर्दाफाश किया है । आज की विभिन्न समस्याओं से जूझने के कारण मनुष्य-मनुष्य के सम्बन्ध में भी एक गिरावटआयी है । इसलिए आज व्यक्ति, व्यक्ति न होकर, सिर्फ विरोध प्रकट करनेवाला जुलूस या भीड़ बनकर रह गया है । इस विसंगत परिवेश को वाणी देने का सफल प्रयास इसमें नाटककार ने किया है । साथ ही साथ इसमें राजनैतिक दलों के हथकण्डों तथा मानवीय मूल्यों के ह्रास का भी व्यंग्य चित्र उभारा गया है ।

रसगन्धर्व

एक बन्दीगृह की कथा को प्रतीकात्मक रूप में लेकर लिखा गया नाटक है श्री मणिमधुकर का "रसगन्धर्व" । तीन कैदियों की बातचीत के माध्यम से नाटककार ने इतिहास, राजनीति तथा सरकारी गज़ट के हथकण्डों पर व्यंग्य किया है । पूर्वार्द्ध के अन्त में लोककथा तथा सामयिकता का कुशल निर्वाह करके उन्होंने वर्तमान राजनीति की स्वार्थपूर्ण नीति पर भी प्रहार किया है । इसमें एक फैंटसी दृश्य के रूप में इन्द्रलोक की कथा का भी चित्रण हुआ है जो हमारे कटु परिवेश के प्रति पीडा जगाने के साथ-साथ सामयिक युग-जीवन पर करारी चोट भी करता है । गन्धर्वों तथा अप्सराओं के अनैतिक सम्बन्ध तथा अप्सराओं के गुमनाम पिताओं के चित्रण द्वारा नाटककार ने प्रतीक रूप में हमारे देश की खोखली और सुविधापूर्ण नीति, स्वार्थता तथा उच्च अधिकारियों के भ्रष्ट आचरण का यथार्थ चित्र उपस्थित किया है । संक्षेप में कहा जाय तो इस नाटक की कथा न्याय-व्यवस्था के

खोखलेपन, वर्तमान परिवेश के भय और तनावपूर्ण वातावरण, राष्ट्रसंघ की नीतियों की व्यर्थता, सरकारी अफसरों की तानाशाही तथा भ्रष्टाचार का मुखौटा उतारकर उनका क्रूर किन्तु यथार्थ रूप प्रस्तुत करती है ।

इतिहास चक्र

आज के नेता जनता की भलाई का वादा करके भी उनका शोषण ही कर रहे हैं । इसमें 'अनामी' सामान्य जनता का प्रतीक है जिसकी मृत्यु स्वार्थी तथा हिंसक शासकों की अव्यवस्था से होती है । इसमें नाटककार ने आज के पत्रकारों पर भी कठोर व्यंग्य किया है । जनता की मांग तथा पीडा की अभिव्यक्ति ही पत्रकार का लक्ष्य होना चाहिए, बल्कि आज के पत्रकार इसके बदले बलात्कार, लूट-मार आदि की अभिव्यक्ति करते हैं । नाटक का पत्रकार अपने वर्ग की मूल्यहीनता तथा विडम्बनात्मक स्थिति का प्रतीक है । इस नाटक की कथावस्तु हम सामयिक युग के कटु सत्य को दर्शाने में सफल हुई है ।

मरजीवा

इस नाटक में श्री मुद्राराक्षस ने वर्तमान युग की असंगत तथा दम घोंटनेवाली परिस्थितियों के कारण युवा वर्ग की पीडाओं का यथार्थ चित्र खींचा है । आज के नेता नैतिक मूल्यों को महत्व देनेवाले नहीं हैं, इस कटु सत्य की ओर इसमें नाटककार ने संकेत किया है । नाटक में "आदर्श" की पत्नी को नौकरी दिलाने के लिए मंत्री उससे एक रात को अपने बंगले

में बिता देने की बात कहता है । लेकिन आदर्श इस अनैतिकता को सहने के लिए तैयार नहीं होता । इसलिए निराश होकर वह पत्नी और पिता के साथ आत्महत्या करने का निश्चय कर लेता है । लेकिन इस कोशिश में केवल पिता की मृत्यु होती है । फिर वह बिजली की सहायता से पत्नी की हत्या करता है, फ्यूज़ उड जाने के कारण आदर्श बच जाता है और पुलिस का शिकार बनता है । अन्त में अपने पद से निष्कासित मंत्री, विरोधी दल के मंत्री को गिराने के लिए राजनैतिक हथकण्डों में भी आदर्श का उपयोग करता है । इस प्रकार इस नाटक में आज के राजनैतिक परिवेश को पूरे तीखेपन के साथ अंकित किया है । आदर्श और पत्नी का चित्रण आज के बुद्धिजीवी युवावर्ग के प्रतीक के रूप में हुआ है जो युगीन विसंगतियों से समझौता न करने के कारण आत्महत्या के मार्ग को स्वीकार करता है ।

आला अफ्सर

मुद्राराक्षस के इस नाटक की रचना नौटंकी शैली में हुई है । इसमें नाटककार ने सामयिक राजनीतिक स्थिति पर तीखा व्यंग्य किया है । न्याय एवं सहानुभूति के नाम पर आज के शासक जनता का शोषण करते हैं । शासक बदलने पर भी उनका चरित्र नहीं बदलता । हर शासक देश की संपत्ति का दुरुपयोग करता हैं । सब के मन में अपनी जेब भरने की चिन्ता है । देश की इस दयनीय स्थिति का यथार्थ चित्र अंकित करने के साथ-साथ नाटककार ने इसमें अफ्सरशाही की भी पोल खोल दी है ।

रक्त कमल

श्री लक्ष्मीनारायण लाल ने "रक्तकमल" में यह सिद्ध किया है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हमारे देश में राष्ट्रीय चेतना, जागृति तथा राष्ट्रीय-एकता के लिए कोई स्थान नहीं है । आज देश में साम्प्रदायिकता, भ्रष्टाचार, बेईमानी, गुण्डाशाही, स्वार्थ लिप्सा आदि से युक्त भ्रष्ट राजनीति का बोलबाला है । यहाँ एक ओर उद्योग-धन्धों का विकास अवश्य हुआ तो दूसरी ओर गरीबी, भूख, अशिक्षा आदि से समाज की यातनाएँ भी बढ़ गयीं । नाटक का नायक "कमल" एक आदर्शवादी तथा देशप्रेमी युवक है । वह विदेश से शिक्षा प्राप्त करके आया है । अपने देश की दयनीय स्थिति देखकर उसे अपमान तथा दुख है । वह देश भर भ्रमण करके देश की दुर्दशा को देखता है । कमल की राय में देश की गिरी स्थिति के जिम्मेदार हैं यहाँ के नेता, उद्योगपति, साहित्यकार, अध्यापक तथा पत्रकार । देश को इस बिगड़ी हुई हालत से उबारने का दायित्व वह नयी पीढ़ी के हाथों में सौंपना चाहता है । इस अभियान में वह अपने भतीजे पप्पु को शामिल कराना चाहता है ।

अब्दुल्ला दीवाना

इसमें श्री लाल ने स्वतंत्रता के बाद भारतीय समाज में व्याप्त विसंगतियों तथा अनैतिकता का पर्दाफाश किया है । आज देश में नैतिकता का कोई मूल्य नहीं है । स्वतंत्रता के पूर्व, नैतिक चेतना का प्रतीक था अब्दुल्ला, जो ईमानदार था । लेकिन आज के अवसरवादी नेता,

भ्रष्ट पुलिसतंत्र, पूँजीपति, असत्यवादी जज, भ्रष्ट युवा-पीढी आदि ने अब्दुल्ला की हत्या की । नाटककार ने इन सब को अब्दुल्ला के हत्यारे कहकर अदालत में ला खडा किया है । अब्दुल्ला की हत्या का मुकदमा ही कथ्य का केन्द्र बिन्दु है । लेकिन मुकदमे के समय जज, वकील, पुलिस सब सोये हुए पाते हैं । इसमें कुत्ते के भौंकने के प्रतीक द्वारा प्रजा का चित्रण हुआ है । इस अदालत में जो कुछ हो रहा है, वास्तव में यहीं हमारे देश में हो रहा है । इस नाटक की रचना के पीछे नाटककार का लक्ष्य देश की सुप्त चेतना को जागृत करना है । साथ ही साथ उन्होंने इस ओर भी संकेत किया है कि आज इस प्रजातंत्र शासन में प्रजा की आवाज़ की कीमत कुत्ते की भौंक से बढ़कर नहीं है ।

युद्धमन

इस नाटक में नाटककार बृजमोहन शाह ने युद्ध के समय मनुष्य मन की प्रतिक्रिया तथा कृत्यों को वास्तविक शब्द एवं घटनाओं के साथ दर्शाने का सफल प्रयास किया है । लेखक की राय में युद्ध मानव जाति की नृशंस हत्या है, मानव संस्कृति और सभ्यता के विरुद्ध बर्बर, पाशविक आचरण है । मनुष्य के जीवन में सबसे बुरा समय युद्ध का समय है । लेकिन युद्ध के बाद की स्थिति उससे भी भयानक है ।

त्रिशंकु

श्री बृजमोहन शाह का एक व्यंग्य नाटक है "त्रिशंकु" । इसमें नाटककार ने मुख्य रूप से युवा पीढ़ी के संघर्ष को अभिव्यक्ति दी है।

लेकिन साथ ही साथ आज की सामाजिक तथा राजनीतिक स्थिति पर भी व्यंग्य किया है । आज युवापीढी की सबसे बडी समस्या है बेरोज़गारी की । इस समस्या के कारण निराश होकर वह समाज में क्रांति लाना चाहती है । लेकिन नाटक का युवक नहीं जानता कि समाज में क्रांति कैसे लाये । इसलिए वह बात-बात में "पता नहीं" कहकर अपनी दुर्बल स्थिति को व्यक्त करता है । इस नाटक में नाटककार ने इस कटु यथार्थ की ओर संकेत किया है कि आज सारा समाज मूल्यों से हट गया है । इसलिए ही आज का मनुष्य भी पथभ्रष्ट हो गया है । इस नाटक के ज़रिए आज के जीवन की विसंगति, अर्थहीनता तथा विडम्बना को दिखाने में नाटककार सफल हुए हैं ।

टूटते परिवेश

श्री विष्णु प्रभाकर का एक नाटक है "टूटते परिवेश" । स्वतंत्रता के बाद भारतीय परिवेश में जो परिवर्तन आया है, इसका चित्रण इसमें है । साथ ही साथ पुरानी पीढी के प्रति नयी पीढी का अनादर और अनास्था की भी अभिव्यक्ति है ।

एक सूत्र में पिरोये गए समकालीन प्रसंग और पौराणिक प्रसंग

मिस्टर अभिमन्यु

इस नाटक में श्री लाल ने यह सिद्ध किया है कि आज देश में यदि कोई ईमानदार अधिकारी है तो हमारे राजनेता, उद्योगपति तथा पूँजीपति उसकी ईमानदारी को तोडकर उसे अन्यायी तथा भ्रष्टाचारी बना लेते हैं । हमारे राजनीतिज्ञ पदोन्नति द्वारा या गुण्डों द्वारा जो हथकण्डे

अपनाते हैं, उसका सच्चा चित्र इसमें उभारा गया है । महाभारत का अभिमन्यु दूसरों द्वारा बनाये गये चक्रव्यूह में लडता हुआ, अन्त में मारा गया । लेकिन आज के अभिमन्यु लड भी नहीं पाता और मर भी नहीं पाता । इसमें नाटककार ने आधुनिक मनुष्य को उसके आन्तरिक तथा बाह्य- दोनों संदर्भों और परिवेश में रखकर बडी सूक्ष्मता से उसकी त्रासदी को अंकित किया है ।

एक सत्य हरिश्चन्द्र

इसमें नाटककार श्री लक्ष्मीनारायण लाल ने धर्म की आड़ लेकर सत्ता हथियानेवाले आज के राजनीतिज्ञों पर तीखा प्रहार किया है । ऐसे नेताओं का विरोध करनेवाले पात्र के रूप में हरिजन "लौका" का चित्रण हुआ है । जब देवधर शूद्रों को दबाने के लिए सवर्ण-शूद्र संघर्ष खडा कर देता है तब लौका अहिंसा के मार्ग को अपनाकर साथियों को प्रतिकार करने से रोकता है । वह सत्यनारायण की कथा के रूप में "सत्य हरिश्चन्द्र" नाटक खेलता है । इसमें नाटककार लाल ने देवधर की करतूतों के माध्यम से आधुनिक भ्रष्ट तथा गन्दी राजनीति का चित्र खींचा है । साम्प्रदायिक दंगों एवं धन की सहायता से लौका को दबाने के प्रयत्न में देवधर पराजित हो जाता है । श्री सुभाष भाटिया की राय में "इस नाटक में लाल ने दबी हुई, कुचली हुई, प्रश्नहीन जनता के मुँह में न केवल जबान रख दी है, अपितु उसमें जागृति भी ला दी है ।"[1]

---

1. डॉ. सुभाष भाटिया - लक्ष्मीनारायण लाल का रंग-दर्शन - पृ. 64

एक और द्रोणाचार्य

श्री शंकर शेष ने "एक और द्रोणाचार्य" नाटक में इस सत्य का पर्दाफाश किया है कि "सुविधा आदमी को अपाहिज बना देती है" । द्रोणाचार्य के जीवन में यही होता है । अपनी सुविधा के लिए वह अपने अस्तित्व को खोकर व्यवस्था की कठपुतली बनता है । उपकृत होकर कर्तव्य पालन करते समय, उचित, अनुचित को भी वह पहचान नहीं पाता । इसलिए ही वह एकलव्य से गुरुदक्षिणा के रूप में अँगूठा माँग लेता है । द्रौपदी के वस्त्र-हरण के समय भी हम यही देख सकते हैं कि अपनी आँखों के सामने अन्याय को देखकर भी वह चुप बैठता है । नाटककार की राय में आज के अध्यापक भी द्रोणाचार्य की तरह है । वह भी व्यवस्था द्वारा खरीदा गया है । इसमें नाटककार ने प्राचीन कथा को आधुनिक जीवन से जोडने का सफल प्रयास किया है । गुरु द्रोणाचार्य की परंपरा आज भी चल रही है । लेकिन समाज की भलाई के लिए द्रोणाचार्य की परंपरा को खत्म करके, स्वप्रज्ञ गुरुओं की परंपरा के निर्माण की ज़रूरत है । इस नाटक के द्वारा नाटककार यही सन्देश देना चाहते हैं ।

शम्बूक की हत्या

ब्राह्मण के पुत्र की असामयिक मृत्यु पर राजा राम को शम्बूक की हत्या करनी पडी । इस कथा को आधार बनाकर लिखा गया, नरेन्द्र कोहली का नाटक है "शम्बूक की हत्या" । इसके द्वारा नाटककार ने सामयिक युग की सारी परिस्थितियों एवं उसकी विसंगतियों को अंकित किया है ।

गरज है कि स्वतंत्रता के बाद राजनीति के क्षेत्र में व्याप्त समस्त विद्रुपताओं को अभिव्यक्त करने में इस युग के नाटककार सफल हुए हैं । आज के भ्रष्ट शासन में निरीह आमजनता की दयनीय स्थिति को दर्शाकर अपने आप को उबारने की प्रेरणा भी उन्होंने अपनी रचनाओं द्वारा जनता को दी है । इन नाटकों में चित्रित विभिन्न पहलुओं का विस्तृत अध्ययन आगे के अध्यायों में हुआ है ।

तीसरा अध्याय

सत्ता की खुमारी में मस्त राजनीतिज्ञ

तीसरा अध्याय

सत्ता की खुमारी में मस्त राजनीतिज्ञ

आज समूचे भारतीय राजनैतिक क्षेत्र में जो नैतिक मूल्यच्युति आयी है, उसके कई कारण हैं । मूल्यों के प्रति समर्पण भाव रखनेवाले नेताओं की कमी इसका एक मुख्य कारण है । प्राक् स्वतंत्रता काल में हमारे देश में पद-ओहदे, सुख-सुविधा आदि त्यागकर स्वतंत्रता-संग्राम में भाग लिये नेतागण थे जिनमें गान्धीजी, नेहरू, पटेल, तिलक, शास्त्री आदि प्रमुख हैं । लेकिन आज देशप्रेम, देश की एकता, राष्ट्र की उन्नति, पतितोद्धारण, निरक्षरता और गरीबी का उन्मूलन, समाज-कल्याण आदि को ध्यान में रखकर निस्वार्थ सेवा करनेवाले नेताओं की कमी है । नेताओं में जिन नैतिक मूल्यों का अभाव है, आमजनता में भी उन मूल्यों का अभाव होना स्वाभाविक है । चरित्रहीन नेताओं के संपर्क में आनेवाली आमजनता भी चरित्रहीन और स्वार्थी बनने की ताकत रखती हैं ।

आज सत्ताधारियों की राजनीति स्वार्थसिद्धि की राजनीति बन चुकी है ; उनका आदर्शवाद धन का आदर्शवाद हो गया है । जनसेवा आत्मसेवा बन गयी है । इस सन्दर्भ में नेहरूजी का निम्नलिखित कथन विशेष उल्लेखनीय प्रतीत होता है । उन्होंने कहा था - "राजनीति और अर्थशास्त्र की दुनिया में सत्ता की खोज प्रमुख हो गयी हैं और जब सत्ता प्राप्त होती है तो बहुत सारे मूल्य नष्ट हो गये होते हैं ।"[1]

---

1. " Today in the world of politics and economics there is a research for power and yet when power is attained much else of value has gone. Political trickery and intrigue take place of idealism and cowardice and selfishness in the place of disinterested courage" - Nehru- The Discovery of India- P.595.

आज के नेताओं में सत्ता का मोह प्रबल है । सत्ता प्राप्त करने के लिए किसी भी मार्ग को अपनाने को वे तैयार हैं । इसके बारे में डा महीपसिंह ने लिखा है - "हमने देखा, कल तक त्याग और बलिदान की दुहाई देते और देशभक्ति के तराने गानेवाला नेता वर्ग सत्ता मिलते ही भूखे भेड़ियों की तरह धन और यश कमाने पर टूट पड़ा है । चारों तरफ एक अजीब सी हफरा-तफरी है । कोई भी मौका चूकना नहीं चाहता, समय रहते सभी इतना एकत्र कर लेना चाहते हैं कि गद्दी न रहने के बाद भी किसी प्रकार की चिन्ता न रहे ।"[1] ऐसे चरित्रहीन और भ्रष्टाचारी नेताओं के हाथ में पड़ने से देश का भविष्य भी अन्धकारमय होता जा रहा है । इस कटु सत्य को स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटककारों ने भली-भाँति पहचान लिया है । उनकी रचनाएँ इस जानकारी की सही दस्तावेज़ है । साम्राज्य लिप्सा, राजनैतिक कुचक्र, झूठे वादे, कोरे आश्वासन, सत्ता अथवा सिंहासन के प्रति मोह आदि के कारण जनता को हमेशा उत्पीड़ित करनेवाले नेताओं का चित्रण सुशील कुमार सिंह ने "सिंहासन खाली है" में किया है । शक्तिशाली सत्ता द्वारा जनता के शोषण का इतिहास बहुत पुराना है । सुशील कुमार सिंह इस शोषण को एक अंतहीन सिलसिला मानते हैं । उनकी राय में प्रजा और राजा के मधुर सम्बन्धों के बीच ज़हर उस समय से ही व्याप्त हुआ होगा, जब पहली बार सत्ता, सिंहासन तथा राजा की स्थापना हुई होगी । रक्षक बनने के स्थान पर राजा भक्षक बन रहा है । खाली सिंहासन पर बिठाने के लिए एक सुपात्र की खोज ज़ारी रहती है । सिंहासन के खाली होने की स्पष्ट व्याख्या सूत्रधार देते हैं -

इसपर बैठने वाला राजा सत्य, अहिंसा और न्याय की हत्या करके भाग गया है..... हर युग में, हर सभ्यता ने एक नया शाहीजामा पहनकर

---

1. संपादक नरेन्द्र मोहन, देवेन्द्र इस्सर - विद्रोह और साहित्य - पृ. 35

मानवता को भटकाया है । न जाने कितने लोग आये और चले गये.....
नश्वरता के इस अनन्त चक्र का अवशेष रह गया, सत्ता का प्रतीक यह सिंहासन
जो आज भी सुपात्र की प्रतीक्षा आहत और पीड़ित जनसमूह के कांपते हुए
विश्वास को संजोये, सुपात्र की खोज के लिए..... सिसक सिसककर....
प्रार्थना कर रहा है ।[1]

आज के ज़माने की राजनीति यथार्थ को झुठलानेवाली है । सत्य का गला घोंटनेवाली यह राजनीति बहुत जल्दी जनहन्ता राजनीति का रूप धारण करती है । अधिकांश नेता होशियार किस्म के हैं जिनमें कूटनीतिज्ञता, दूरदर्शिता, दूसरों की कमज़ोरी से लाभ उठाने की क्षमता, अवसरवादिता आदि लबालब भरी हुई है । सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ने तीन डाकुओं - कर्मवीर, सत्यवीर और दुर्जनसिंह - को बाद में नेताओं के रूप में बदलते हुए और अनपढ़ गाँव वालों की आस्था और श्रद्धा के पात्र बनते हुए दिखाकर इसका बखूबी चित्रण किया है कि आज की राजनीति में स्वार्थी लोग किस प्रकार नेता बनते हैं । इन तीनों के लिए आत्मसेवा ही प्रमुख है, समाज सेवा बाद में । इसलिए वे गाँव की गरीब औरत विधवा की बकरी को हड़प लेते हैं और गाँव वालों को उल्लू बनाकर उन्हें विश्वास दिलाते हैं कि उस बकरी की माँ की, माँ की, माँ की माँ गाँधीजी की बकरी थी । अतः वह गाँधीजी की बकरी है । ग्रामीणों की अज्ञता का लाभ उठाते हुए वे तीनों बहुत रुपये कमाते हैं और चुनाव जीतते हैं । वे जनता को विश्वास दिलाना चाहते हैं कि वे उनके हैं, उनके लिए हैं और हमेशा न्याय ही करते हैं । इन नेताओं के माध्यम से नाटककार यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि देश के स्वार्थी और झूठे नेता जनता की सेवा के बहाने उसे लूट रहे हैं ।

---

1. सुशील कुमार सिंह - सिंहासन खाली है - पृ. 7, 40

इसके बारे में श्री गिरीश रस्तोगी का कथन उल्लेखनीय है - "डाकुओं का, आगे नेताओं में बदल जाना स्वत: सहज व्यंग्य हो जाता है । नेताओं के लम्बे-लम्बे भाषण न केवल नेताओं के झूठे दावों, शब्दावली और टोण को सामने लाते हैं, बल्कि हमारे राजनीतिक नेताओं के व्यक्तित्व और चरित्र को उनके कारण उत्पन्न हुई विसंगतियों को तोडने की कोशिश है ।"[1]

श्री सुशीलकुमार सिंह ने "सिंहासन खाली है" में ऐसे लुटेरे नेता का चित्र उपस्थित किया है जो अपनी शक्ति को दैवीय अधिकार कहकर एक स्त्री को बलपूर्वक अपनाना चाहते हैं । इसमें नाटककार ने इस तथ्य की ओर भी संकेत किया है कि नेता बनने के लिए बुद्धि और सामर्थ्य की भी जरूरत है । नेता का कथन है - "राजा बनाया नहीं जाता । राजा अपनी शक्ति और सामर्थ्य से बनता है । राजा को सिंहासन दिया नहीं जाता, राजा उसे अपने बाहुबल और बुद्धि-कौशल से प्राप्त करता है ।"[2]

शासकों में यह विश्वास रूढमूल हो चुका है कि जब तक उनमें सत्ता है तब तक उन्हें कोई बिगाड नहीं सकता । लक्ष्मी नारायण लाल के "एक सत्य हरिश्चन्द्र" का देवधर ऐसे झूठे अहं से ग्रस्त एक उद्दण्ड नेता है जो अपने विरोधियों का काम तमाम करने के लिए नयी चाल चलाते हैं । हिन्दु-मुसलमानों के बीच लडाई की योजना बनाकर उसमें अपने विरोधी हरिजन नेता लौका तथा उसके साथियों को हमेशा के लिए खतम करने का सपना वह संजोता है । उसके अंदर दबा हुआ दम्भ अनजाने यों फूट निकलता है - "याद रखो,

---

1. गिरीश रस्तोगी - समकालीन हिन्दी नाटककार - पृ. 183
2. सुशील कुमारसिंह - सिंहासन खाली है - पृ. 32

जब तक मेरे पास ताकत है तब तक मुझे कोई कुछ नहीं कर सकता ।"[1]

लक्ष्मीनारायण लाल के "कलंकी" का अकुलधेम भी ऐसी पशुशक्ति के बल पर अपने बेटे को, पत्नी को और सारी प्रजाओं को दबाते रहे । वह एक ऐसा निरंकुश शासक था जो अपनी जनता को प्रश्नहीन, प्रतिक्रियाहीन देखना चाहता है । जब उसने समझ लिया कि अपने बेटे में उसकी कच्ची उम्र में ही प्रश्न करने की जिज्ञासा है तो उसने उसके हाथ-पैर बाँधकर एक बन्द रथ में डालकर उच्चशिक्षा के बहाने उसे विक्रम-विहार में भेज दिया । बेटे की रक्षा के संघर्ष में अकुलधेम की पत्नी भी मर जाती है । अकुलधेम जैसे शासक अपनी स्वार्थपूर्ति हेतु प्रश्नहीन जनता को पहले दिशाहीन कर देते हैं, फिर वैयक्तिक और सामाजिक दोनों स्तरों पर उन्हें निर्वीर्य कर शव बना देते हैं । यह नाटक मात्र वर्तमान का ही नहीं, बल्कि भविष्य की सच्चाई को प्रकट करने में सक्षम बन गया है । इसके बारे में श्री रमेश गौतम का विचार है कि "सन् 1969 की राजनीतिक पृष्ठभूमि पर लिखे गये "कलंकी" नाटक ने भविष्य में घटित घटनाओं का संकेत देकर अपनी काल-निरपेक्षता को सिद्ध कर दिया है । प्रजातंत्र की रक्षा के नाम पर आपातकाल में भारतीय जनता को भी निरंकुश सत्ता के हाथों उसी प्रकार ही पीड़ित किया गया जिस प्रकार अवधूत और तांत्रिक ने जनतंत्र के समर्थक हेरूप को पीड़ित किया ।"[2] तांत्रिक युग की इस निरंकुश सत्ता ने जनसाधारण को सहज जीवन बोध से विहीन कर उसे प्रश्नहीन बना दिया था । ऐसी स्थिति में आत्मानुभव उनके वश की बात नहीं रह जाती और विवेक एवं चिंतन की क्रिया से उनका दूर का संबन्ध भी नहीं रह जाता है ।

---

1. लक्ष्मी नारायण लाल - एक सत्य हरिश्चन्द्र - पृ. 58
2. रमेश गौतम - समकालीनता के अतीतोन्मुखी नाटक - पृ. 106

श्री लक्ष्मीनारायण लाल ने "नरसिंह कथा" में अहंकारग्रस्त हिरण्यकशिपु की निरंकुशता को रेखांकित किया है ।। उसकी घोषणा है - "मेरे अलावा कोई दूसरा नहीं ।..... मेरे में ही सबकुछ है । जिस दिन मैं नहीं, कहीं कुछ भी नहीं ।"[1]

मानवमूल्यों की हत्या करनेवाला हिरण्यकशिपु प्रजातांत्रिक व्यवस्था समाप्त करके हर कहीं निरंकुश शासन, कठोर अनुशासन, भीषण दण्ड-व्यवस्था आदि स्थापित करता है । प्रचार तन्त्र के सहारे अपनी शासन व्यवस्था की गुणात्मक उपलब्धियों का खूब प्रचार करने को भी वे भूलते नहीं ।

श्री दयाप्रकाश सिन्हा के "कथा एक कंस की" का कंस जनता की सारी स्वतंत्रता छीननेवाला, शक्तिसंपन्न, अहंकारी और स्वेच्छाचारी शासक है । कंस अपने अन्दर के मानव को खतम करके दानव बनता है । पिता उग्रसेन को कैद करने से तथा अपनी पत्नी की हत्या करने से वह नहीं हिचकता । यों नाटककार ने दिखाया है कि भावुक, संगीतप्रेमी, अहिंसक, प्रकृति प्रेमी, सुख और शांति का सपना देखनेवाला कंस, सत्ता हथियाकर क्रूर, घोर, हिंसक और सन्देही, सत्तापिपासु शासक बन जाता है । दयाप्रकाश सिन्हा ने परंपरा की लीक से हटकर कंस को पाठकों के सामने प्रस्तुत किया है । नाटक का कंस पहले ऐसा एक व्यक्ति था जो राजनैतिक षड्यन्त्रों से अलग रहकर साधारण व्यक्ति का जीवन जीना चाहता था । राजसत्ता ने कंस के कोमल चित्तवाले मानवीय रूप को ठुकराया । उसकी अहिंसावृत्ति को उसके शासक पिता ने नपुंसकता की संज्ञा दी क्योंकि राजसत्ता दया और सहृदयता के बल पर नहीं

---

1. लक्ष्मीनारायण लाल - नरसिंह कथा - पृ. 34, 76

टिकती, कपट और हिंसा के बल पर टिकती है । कंस के परिवर्तित चरित्र के माध्यम से नाटककार ने स्पष्ट किया है – "सत्ता का तर्क अत्यन्त क्रूर होता है । सत्ताधारी के चारों ओर भय और संशय का घेरा जैसे जैसे जकड़ता जाता है वैसे वैसे ही वह अकेला होता है । न उसका कोई मित्र होता है, न सहायक, न पत्नी, न प्रेयसी, न भाई, न बहन । सब ही संशय से दंशित हो जाते हैं । सत्ता और अधिक सत्ता मात्र ही उनके लक्ष्य रह जाता है जो मरीचिका के समान उसे अन्त तक भरमाये रखता है ।"[1] श्री विष्णु प्रभाकर की राय में "कंस की यह कथा मात्र एक प्रतीक है । वास्तव में यह कथा उस प्रत्येक तानाशाह की है जो अपने युग की दूषित राजनीति और राजसत्ता के मोह की उपज है ।"[2]

डॉ. शंकर शेष ने "कालजयी" में यह सिद्ध किया है कि राजनैतिक जीवन में, सत्ता की खुमारी में हर सत्ताधीश अपने आपको कालजयी बनाने की मंशा रखता है । इसमें कालजयी एक ऐसा राजा है कि जो अन्याय, अत्याचार और दमन से अपना राजकारोबार चलाता रहता है । अपने वैभव में मस्त कालजयी को न प्रजा की चिंता है, न राजकारोबार की । वह अपने चिर तारुण्य की साधना में व्यस्त है । अपनी इस साधना में व्यवधान डालनेवालों का प्रबन्ध करना वह भलीभाँति जानता है । विद्रोह करनेवाले नागरिक जो पकड़े जाते हैं उन्हें अपने भूखे शेरों, चीतों और भेड़ियों को खिला देने का आदेश देते हैं और जो स्त्रियाँ पकड़ी गयी है उन्हें अपने सैनिकों को सौंप देने को कहते हैं । "कपालदर्शी" को अध्ययन करने के लिए उस राज्य से बीस हज़ार खोपड़ियाँ मिलीं । इसके बारे में राजा के पूछने पर कपालदर्शी का यह जवाब – "महाराज, मुझे यह बताते हुए बहुत गर्व होता है कि आपके राज्य में खोपड़ियों की कोई

---

1. दयाप्रकाश सिन्हा - कथा एक कंस की - भूमिका - पृ. 14
2. कादम्बरी - जून -18

कर्मा नहीं "[1] — भी शासक की क्रूरता की ओर संकेत करनेवाला तथ्य है । सत्ता के मद में पागल राजा है "कालजयी" । अपने राजसी वैभव में मस्त रहने के कारण, प्रजा के प्रति दायित्वों को वह नहीं निभाना चाहता । "प्रजा का पालक राजा"- इस रूप को वह नकारता रहता है और अन्याय, अत्याचार तथा दमन से वह राज कारोबार चलाता है । उसके मन के शाश्वत तारुण्य की प्यास के कारण वह एकदम अंधा रहता है, प्रजा के दुःख-सुख से अपरिचित भी रहता है । अपनी इस यौवन-साधना में बाधा डालने वाले को वह मृत्यु की अतल गहराईयों में फेंक देता है । देश के छोटे-छोटे बच्चे तक उसकी हृदयहीन एवं निर्मम कहानियों से कांपते रहते हैं । अपनी निरंकुशता से उसने प्रजा में ऐसे आतंक को पैदा किया कि सांस लेने के लिए भी जनता को उसकी आज्ञा लेनी पडती है । कालजयी पूरी तरह से यह भूल चुका है — "जन साधारण को दमन या आतंक से प्रभावित करके चुप अवश्य किया जा सकता है - उन्हें विश्वस्त नहीं किया जा सकता । राज्य के शुभ में जनता का आतंकित होना नहीं, विश्वस्त होना अधिक महत्वपूर्ण होता है ।"[2]

श्री नरेन्द्र कोहली ने "शंबूक की हत्या" में सत्ता की उस अन्ध नीति पर सशक्त प्रहार किया है जो जनता को विद्रोह की गन्ध आनेवाले "क्या", "क्यों", "कौन", "कैसे" आदि खतरनाक शब्दों को अपने मुँह से बाहर न आने देती । अपनी आँखों के सामने हत्या हो जाने पर भी ऊपर से आदेश आये बिना हत्यारों को न पकडनेवाला पुलिस सिपाही, पुलिस व्यवस्था की भक्षक और दायित्वहीन नीति एवं सत्ता की लापरवाही का जीवन्त प्रतीक है ।

---

1. शंकर शेष - कालजयी - पृ. 9
2. साप्ताहिक हिन्दुस्तान, 13 अक्टूबर, 1985 - पृ. 42

श्री तुशीलकुमार सिंह का "आज नहीं तो कल" भी संपूर्ण भारत की राजनैतिक व्यवस्था का भ्रष्ट रूप पेश करता है । उनकी राय में निरंकुश शासकों के हाथ में जनता की नियति उस बन्दर जैसी है, जिसकी डोर मदारियों के हाथों में है । यदि जनता उसका विरोध करने के लिए मुट्ठियाँ उठायेगी तो ये उनके हाथ तोड देंगे, सिर उठाएगी तो सिर कुचल देंगे, सीना तानेगा तो जंजीरों से जकड देंगे । ऐसी व्यवस्था - जहाँ शासक, विद्रोह करने के लिए अग्रसर होनेवाली जनता को कुचल देता है, उन्हें हमेशा के लिए समाप्त कर देता है - को तुशील कुमार सिंह ने सडी-गली और खोखली व्यवस्था का नाम दी दिया है ।

श्री सर्वेश्वर दयाल सक्सेना के नाटक "अब गरीबी हटाओ" में देश को शासन के दुर्बल घोडे पर सवार दिखाया गया है, जो मात्र चलने का दिखावा करता है । यहाँ जन कल्याण का प्रयत्न केवल इमारतों, कमीशनों और मौखिक लिखा-पढी तक ही सीमित रह जाता है । न्यायालयों से निर्धन के लिए न्याय नहीं है । झूठे मुकदमा चलाना, जेलों में अकारण ठूँस देना, उनके बच्चों का अनाथों के समान भटकना - यहीं सब उनकी तकदीर में लिखा है । लगान न देनेवाले लोगों को राजा मार डालते हैं और उनकी ज़मीन को हडप लेते हैं इसमें प्राचीन और आधुनिक युग में एक ही प्रकार के स्थिति-निर्माण करके नाटककार यह बताना चाहते हैं कि हमारे देश में शोषण का यह क्रम युगों से चल रहा है ।

श्री मणिमधुकर ने "बुलबुल सराय" प्रचण्डसेन नामक एक अत्याचारी राजा का चित्र उपस्थित किया है जो अपने पिता की हत्या करके,

माँ और बहन को महलों से निकालकर शासन कार्य संभालता है । श्री मणिमधुकर के "खेला पोलमपुर" का राजा भी इतना निरंकुश एवं क्रूर है कि वह अपने स्वास्थ्य की सुरक्षा के लिए प्रतिदिन एक व्यक्ति की बलि लेना चाहता है । राजा लक्खीशाह वृद्ध, नपुंसक तथा रोगी भी है और उसके कर्मचारी रिश्वतखोर, भ्रष्टाचारी तथा परस्त्रीगामी हैं । राजा की निरंकुश एवं असमर्थ शासन-प्रणाली के कारण पोलमपुर में हर कहीं अव्यवस्था फैली है तथा वहाँ की जनता असन्तुष्ट है । जनता के प्रति राजा में कोई हमदर्दी नहीं ।

ये निरंकुश तथा क्रूर राजा अपने आपको ईश्वर समझते हैं । श्री जगदीश चन्द्र माथुर ने "पहला राजा" में इस स्थिति का यथार्थ चित्रण किया है । ब्रह्मावर्त का राजा बनने के बाद वेन इतना उद्दण्ड बन जाता है कि वह ईश्वर के अस्तित्व को भी चुनौती देता है । ईश्वर का नाम लेनेवाले मुनि लोगों से वे पूछते हैं - "मूर्खों, किस परमेश्वर की बात कहते हो ? मैं ही तुम्हारा स्वामी हूँ, तुम्हारा परमेश्वर हूँ । सब देवता मेरे शरीर में निवास करते हैं । इसलिए अपने सभी कर्मों द्वारा एक मेरा ही पूजन करो । सब यज्ञों को छोड़कर मुझे ही बलि-समर्पण करो ।"[1]

"इतिहास चक्र" में दयाप्रकाश सिन्हा ने आज के सभ्य एवं सुसंस्कृत कहलानेवाले शासकों की हिंसात्मक और पाशविक नीतियों पर व्यंग्य किया है । आदिकाल के कबीलों के सरदार और आज के मंत्रियों में विशेष रूप से कोई भेद नहीं है । सत्ता के कर्णधार और व्यवसायी मिलकर सामान्य जनता को लूट रहे हैं । सत्ताधारी आम जनता की चिन्ता छोड़कर अपनी

---

1. जगदीश चन्द्र माथुर - पहला राजा - पृ. 23

भौतिक उपलब्धियों के सोचविचार में मग्न हैं । जनता की बातों को अनसुना करनेवाले इन शासकों का राजभवन जनता की आकांक्षाओं एवं स्वप्नों का बन्दीगृह है । अपनी सत्ता की शक्ति से वे सब प्रकार के अन्याय करते हैं क्योंकि "हुकूमत जिसके पास है उसका कुछ नहीं होगा ।"[1]

इन क्रूर एवं निरंकुश शासकों की सत्ता की मुट्ठी में जकडी दुनिया की स्थिति बहुत ही शोचनीय है । इसके बारे में "उत्तर प्रियदर्शी" में अज्ञेय ने "घोर" की वाणी द्वारा अपनी जो राय व्यक्त की है वह बिलकुल सच है -

"यह मेरा संसार-नरक है
सत्ता की मुट्ठी में जकडी
यहाँ
कल्पना
तोड रही है साँस"[2]

ये निरंकुश शासक जनता के सामने हर प्रकार की कूटनीति, षड्यन्त्र, भ्रष्टाचार और विश्वासघात करते हैं । श्री ज्ञानदेव अग्निहोत्री ने "शुतुरमुर्ग" में वर्तमान राजसत्ता के खोखलेपन व कागज़ी योजनाओं से जनता को धोखा देनेवाले नेताओं पर करारी चोट की है । "शुतुरमुर्ग" मनुष्य की उस प्रवृत्ति का प्रतीक है, जिसके कारण मनुष्य हमेशा सत्य और यथार्थ का सामना न करके पलायन की वृत्ति को अपनाता है । यह प्रवृत्ति, शासन तन्त्र में भी सहायक बन जाती है । नाटक का राजा इसी शुतुर-प्रवृत्ति से युक्त है । वे सुनहले

---

१. दयाप्रकाश सिन्हा - इतिहास चक्र - पृ. ५५
२. अज्ञेय - उत्तर प्रियदर्शी - पृ. ४८

भविष्य की आशा दिलाकर जनता का शोषण करते रहते हैं । भूख की समस्या का हल करने के लिए ये भूख की परिभाषा बदल देते हैं । राजा का कथन है — "भूख अब एक शारीरिक स्थिति नहीं बल्कि मनःस्थिति मानी जायेगी । पेट में भूख लगकर मरने का राज्य जिम्मेदार है - परन्तु मस्तिष्क में भूख लगने का नहीं और चूँकि हमारी घोषणा के अनुसार भूख सिर्फ मस्तिष्क को लग सकती है । अतः इस नयी परिभाषा के अनुसार सदैव के लिए भूख-समस्या का अन्त ।"[1]

गान्धीवाद का हनन

आज हमारे देश में राष्ट्रपिता महात्मा गान्धी के सिद्धांतों के लिए कोई स्थान नहीं है । गुलाम भारत को मुक्त करना और उसका निर्माण करना गांधीजी का लक्ष्य था । उसमें प्रथम भाग की पूर्ति हुई । दूसरे की पूर्ति के पहले ही उनकी हत्या हुई, और उनके अनुयायी, अब उस स्वप्न के बारे में भूल भी गये । गान्धीवाद के प्रमुख सिद्धान्त थे सत्य, अहिंसा, सत्याग्रह, अस्पृश्यता-निवारण, खादी-प्रचार, शिक्षा, राष्ट्रभाषा-प्रेम, विकेन्द्रीकरण, ट्रस्टीशिप, हृदयपरिवर्तन, ब्रह्मचर्य, मद्यवर्जन, स्वदेश-प्रेम, श्रम का महत्व, नारी-उत्कर्ष, हरिजन-उद्धार आदि ।

गान्धीवाद के अन्तर्गत लोकसेवा और लोक-कल्याण की भावना को विशेष रूप से महत्व दिया गया है । निर्धन की सेवा को ईश्वर की सेवा मानते थे । गान्धीजी ने अपने भाषणों, ग्रन्थों और संपादकीय लेखों में इस बात पर ज़ोर दिया है । दूसरों की सेवा करने में ही मानव-जीवन की

---

1. ज्ञानदेव अग्निहोत्री - शुतुरमुर्ग - पृ. 58

सार्थकता निहित है । लेकिन स्वतंत्र भारत के नेता जो अपने आपको गान्धीजी के अनुयायी घोषित करते हैं, इन सिद्धांतों को अपने पैरों तले रौंदते हैं । गान्धीजी के देहावसान के पश्चात् उनके सिद्धांतों के हिमायती बनकर शासन हथियानेवाले स्वार्थी राजनीतिज्ञों ने इन सिद्धान्तों का हनन ही किया है । डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने इसकी ओर संकेत किया है - वास्तव में हमने स्वतंत्र होकर अपने पिछले आदर्श और आदर्श के नायक दोनों की हत्या कर दी है ।"[1]

गाँधीवाद की दुहाई देते हुए शासन में आये सत्ताधारियों के मुखौटे उतारने के लिए अनेक नाटकों की रचना हुई । आज़ादी के बाद राजनीति के क्षेत्र में गान्धीवाद के नाम पर जो स्वार्थपूर्ण खेल चले, चंद स्वार्थों की पूर्ति के लिए जो चाल चली, उसकी असलियत को श्री सर्वेश्वरदयाल सक्सेना "बकरी" में प्रभावात्मक ढंग से प्रस्तुत करते हैं । स्वतंत्रता के बाद हमारे देश के राजनेताओं ने राष्ट्रपिता गान्धीजी की नीतियों की आड़ में व्यापक शोषण का जाल बिछा दिया । नाटक में दुर्जन, सत्यवीर और कर्मवीर एक गरीब औरत की बकरी को गान्धीजी की बकरी घोषित करके, गान्धीजी के प्रति जनता के मन में बची खुची आस्था से लाभ उठाने में सफल निकलते हैं । ये, "बकरी-संस्थान" और "बकरी-सेवा संघ" के नाम पर दरिद्रता, अकाल और बाढ़ से पीडित ग्रामीण जनता का शोषण करते हैं और "बकरी-धन" चिह्न पर चुनाव जीतकर नेता बनते हैं । उसके बाद वे इसी बकरी को मारकर उसका गोश्त खाते हैं । बकरी-दावत का मज़ा उठाते हुए दुर्जनसिंह कहता है - "यह दावत शाकाहारी दावत कही

---

1. डॉ लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय - द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ. 147

जायेगी । गान्धीजी की नेक, पवित्र बकरी निरामिष ही मानी जायेगी । दीवानजी, बकरी अहिंसावादी होती है, गोश्त तो जंगली सुअर का होता है हम सब शाकाहारी हैं । बकरी शरणम् गच्छामी ।"[1]

इस प्रकार गान्धीजी के शिष्य कहे जानेवाले लोगों ने ही गान्धीजी के सिद्धान्तों को हवा में उडा दिया । इस नाटक में नाटककार ने तीन डाकुओं को नेता बनते दिखाकर, और उनकी काली करतूतों का वर्णन करके आज के हमारे नेताओं पर तीखा व्यंग्य किया है । श्री गिरीश रस्तोगी की उक्ति बिलकुल सही लगती है - "विदेशी दासता से मुक्ति तो हुई, लेकिन स्वतंत्रता के बाद अपने ही नेताओं ने देश की गरीब, साधारण जनता को किसप्रकार छलना आरंभ किया, पूरे नाटक में सत्ता की इसी भ्रष्ट, स्वार्थी प्रवृत्ति और महत्वाकांक्षा के द्वारा उसकी कूटनीतियों, आम आदमी के साथ षड्यन्त्र द्वारा आज के हमारे देश के राजनीतिक चरित्र को सामने लाया गया है ।"[2]

डॉ. सुशील कुमार सिंह ने "सिंहासन खाली है" में गांधीवाद का हनन करनेवाले हमारे नेताओं की पोल खोल दी है । प्राचीन काल से हमारे देश के लोगों के मन में सत्य, अहिंसा और न्याय के प्रति आस्था थी । लेकिन आज स्थिति बिलकुल बदल गयी है । नाटक के प्रारंभ में ही इस बात की ओर संकेत करके सूत्रधार का कहना है - "अनादिकाल से सिंहासन खाली नहीं रहा
लेकिन आज आज यह सिंहासन खाली है
अभी-अभी खाली हो गया है क्योंकि इस पर बैठनेवाला राजा सत्य, अहिंसा और न्याय की हत्या करके भाग गया है ।"[3]

---

1. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना - बकरी - दूसरा अंक, पहला दृश्य
2. गिरीश रस्तोगी - समकालीन हिन्दी नाटककार - पृ. 183

श्री लक्ष्मीनारायण लाल ने "एक सत्यहरिश्चन्द्र" में देवधर के चरित्र द्वारा वर्तमान राजनेताओं के कपट और हथकण्डों का परिचय दिया है । यही चरित्र हर युग में इन्द्र बनकर सत्य को ठुकरा रहा । इसमें जीतन की वाणी द्वारा नाटककार ने गान्धीजी के सिद्धान्तों के हनन की ओर संकेत किया है – "कहता है मेरे स्वप्नों के भारत में जाति या धर्म के भेदों को कोई स्थान नहीं हो सकता वह स्वराज होगा – स्व, राज्य ।"[1]

महात्मा गान्धी का लक्ष्य था – "मैं एक ऐसे भारत को बनाऊँगा जिसमें गरीब से गरीब भी यह अनुभव करेंगे कि यह उनका देश है । इसके निर्माण में उनकी आवाज़ का महत्व है, जिसमें ऊँच-नीच नहीं होगा, जिसमें सभी समुदाय पूरी तरह मिल-जुलकर रहेंगे । ऐसे भारत में अस्पृश्यता और नशाखोरी जैसी बुराइयों के लिए कोई स्थान नहीं होगा । स्त्रियों को भी वही अधिकार होंगे जो पुरुषों को ।..... न तो हम किसी का शोषण करेंगे न अपना शोषण करने देंगे । सभी के हितों की चाहे वे भारतीयों के हो या विदेशियों के, पूरी रक्षा की जायेगी बशर्ते वे लाखों करोड़ों निर्गह जनता के हितों के विरुद्ध न हो । मेरे स्वप्नों का भारत यही है ।"[2] गाँधीजी का यह स्वप्न स्वतंत्रता के बरसों बाद भी कैसे अधूरा रह जाता है । इसकी ओर श्री सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने "अब गरीबी हटाओ" में संकेत किया है । सक्सेना ने सिद्ध किया है कि समाजवाद और गरीबी हटाओ के नारे खोखले हो गये । उन्होंने इस यथार्थ को प्रस्तुत किया है कि देश के कर्णधार ऐसा नाटक रचते हैं जिससे पता चले कि देश की गरीबी हट गई है, सब लोग सुख शांति से हैं । गरीबन का पुरवा नामक गाँव में पीने का पानी लेने के

---

1. लक्ष्मीनारायण लाल – एक सत्य हरिश्चन्द्र – पृ. 16
2. संकलन और संपादन: यू.एन. मोहन राव – महात्मा गान्धी का सन्देश

अधिकार से भी वंचित सत्तर प्रतिशत हरिजनों को मुख्यमंत्री यह विश्वास दिलाते हैं कि गाँव की गरीबी को दूर करने के लिए "गरीबी हटाओ मंत्रालय", "हरिजन कल्याण मंत्रालय" आदि की स्थापना की गयी हैं । लेकिन ये आयोजना कागज़ी आयोजनाएँ मात्र रह जाती हैं । नाटक पढने के बाद हम महसूस करने लगते हैं "गरीबी हटाओ" नारा अपना अर्थ खो चुका है । गरीब-अमीर का भेद मिटाकर एक शोषण मुक्त समाज बनाने के नेक इरादों की घोषणा के बावजूद भी अमीर अधिक अमीर होते गये और गरीब अधिक गरीब । इस संबंध में नाटक का नट कहता है - "गरीबी हटाओ ढगी का नाटक हो गया है । जितना यह नारा ऊपर उठता है, गरीब आदमी उतना नीचे गिरता है, गिराया जाता है ।"[1]

श्री ज्ञानदेव अग्निहोत्री ने "शुतुरमुर्ग" में इस खुरदरे यथार्थ की ओर संकेत किया है कि आज का हर शासक "सत्यमेव जयते" कहकर असत्य ही करता रहता है । ये शासक झूठ बोलकर जनता को धोखा देते हैं । "शुतुरनगरी" में भूख से पीडित होकर कुछ लोगों की मृत्यु हुई । फिर भी मंत्री उसे मानता ही नहीं । मंत्री यह कहकर जनता से सावधान रहने की प्रार्थना करते हैं कि "कुछ व्यक्तियों के भूख से मरने का समाचार निराधार है ।"[2] शासकों की इस असत्यवादी प्रवृत्तियों की ओर संकेत करके इसमें विरोधीलाल का कहना है — "आह ! आपका यह प्यारा वाक्य - सत्यमेव जयते, अर्थात् असत्य जीत रहा है ।"[3]

---

1. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना - अब गरीबी हटाओ - पृ. 62
2. ज्ञानदेव अग्निहोत्री - शुतुरमुर्ग - पृ. 46
3. ज्ञानदेव अग्निहोत्री - शुतुरमुर्ग - पृ. 18

"लडाई" में सक्सेना जी उस समाज की जीती-जागती तस्वीर खींचते हैं जहाँ असली और नकली, ढोंग और ईमानदारी, सत्य और झूठ का भेद मिट गया है । नाटक का सत्यव्रत खुद न गलती करने का और दूसरों से गलती न कराने का इरादा करता है । लेकिन इस प्रयास में उसका साथ देने के लिए उसकी बीवी और बच्चे भी तैयार नहीं । सत्य की लडाई अकेले लडनेवाले सत्यव्रत को इस कटु सत्य से साक्षात्कार करना पडता है कि समाज का कोई भी क्षेत्र भ्रष्टाचार से मुक्त नहीं । सत्य के पहरेदार कहे जानेवाले पुलिस और पत्रकार तक व्यवस्था के हाथों बिके हुए हैं । सत्यव्रत समझ लेता है - "स्वतंत्रता के बाद इस अर्थ में देश में प्रगति हुई है कि लोग खुद को और दूसरों को और अधिक ठगना सीख गये हैं । चोरी-मक्कारी, झूठ-फरेब सबके भाव चढ़े हैं और लोग उन पर आदर्शों का अच्छे से अच्छे लेबल लगाना सीख गये हैं ।"[1]

एक अदालत में अब्दुल्ला नामक एक आदमी की हत्या पर चल रहे मुकदमे पर आधारित "अब्दुल्ला दीवाना" नाटक में लाल ने ठोस सबूत पेश किये हैं कि अब्दुल्ला की हत्या उच्चवर्ग ने की है । उच्चवर्ग के विभिन्न पक्षों का प्रतिनिधित्व करनेवाले, चारों अभियुक्तों के सम्बन्ध में श्री नरनारायण राय का कथन बिलकुल सही लगता है — "उच्चवर्गी ये अभियुक्त स्वार्थ और अवसरवादिता, उन्मुक्त और अबाध विलासिता के पंक में कण्ठ तक डूबे हुए हैं ।"[2]

एक और द्रोणाचार्य" में श्री शंकर शेष ने यही दिखाया है कि व्यवस्था की कठपुतली बनकर जितप्रकार द्रोणाचार्य एक निर्दोष बालक

---

1. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना - लडाई - पृ. 30-31
2. नरनारायण राय - नाटककार लक्ष्मी नारायण लाल की नाट्य साधना -

एकलव्य का अंगूठा माँग लेता है, उसी प्रकार आज के समाज में चंदू जैसे निरपराध और ईमानदार विद्यार्थी राजनैतिक साज़िश का शिकार बनता है और उसका भविष्य अंधेर बन जाता है । नाटककार की राय बिलकुल सही है कि आज की व्यवस्था ही हमें झूठ बोलना सिखाती है । इसमें अरविंद के यह पूछने पर कि तुम झूठ बोलना कितने सिखाया, तब विमलेन्दु का उत्तर है - "व्यवस्था ने । दम घोंटकर रख देनेवाली व्यवस्था ने ।"[1]

दल-बदल राजनीति

आज भारत में राजनीति की सबसे बड़ी समस्या है "दल-बदल" की । चुनाव के करीब निकट, ये स्वार्थी नेता एक पार्टी छोडकर दूसरी पार्टी बना लेते हैं । हमारे देश में ऐसी घटनाएँ नित होती रहती हैं । श्री बृजमोहन शाह ने "त्रिशंकु" में ऐसे अत्याचारी नेताओं की पोल खोल दी है, जो देश को खुशहाल बनाने और करप्शन से मुक्त कराने के खूबसूरत बहाने निकालकर, पुराने दल छोडकर, नये दल बनाते हैं और बडे कारखानों और लुटेरों से नकद प्राप्त करते हैं ।

इसमें एक बेकार शिक्षित युवक को तन्मोहन के जाल में फँसा देता है । उस बेकार युवक को नेता विश्वास दिलाता है कि उसके जैसे हज़ारों बेकार युवकों के भविष्य की रक्षा के लिए ही उन्होंने एक नये दल का निर्माण किया है । देश के पूरे माहौल में व्याप्त भ्रष्टाचार की जडें उखाडना और राष्ट्र को खुशहाल बनाना, जन-जन को रोटी, कपडा और मकान देकर छोटे-बडे, ऊँच-नीच के भेदभाव को आमूल-चूल कुचलना और यों सच्चा

---

1. शंकर शेष - एक और द्रोणाचार्य - पृ. 106

समाजवाद स्थापित करना इस दल का मकसद है । नेता युवक के मन में सुनहले सपने जगा देते हैं और अपनी पार्टी का हिमायती बनाना चाहते हैं - "हमारे दल में आने से तुम्हें फायदे हैं । तुम्हें चुनाव लड़ा सकते हैं, चुनाव में हार गये तो राजदूत बना सकते हैं, चुनाव जीतते ही किसी मिल मालिक या ठेकेदार से पाँच हज़ार क्या दस हज़ार नकद दिला देना हमारे बायें हाथ का खेल है ।"[1]

श्री लक्ष्मी नारायण लाल ने "अब्दुल्ला दीवाना" में हमेशा दल बदलनेवाले आज के हमारे नेताओं का मुखौटा उतार दिया है । ऐसे एक नेता के बारे में इसमें एक चपरासी का कथन विशेष उल्लेखनीय है । वह कहता है — "जी हाँ, पहले वह तिरंगे कपड़े पहनता था..... फिर लाल, सफेद, फिर काला, फिर लाल, फिर पीला और गेरुआ । फिर आने लगा, जाने लगा - आए राम - गए राम । कहने लगा एक ही रंग का कपड़ा मैं रोज़-रोज़ नहीं पहनूँगा । फिर वह हर रोज़ रंग बदलने लगा । जी हाँ, रोज़ ।"[2]

आज हमारे देश में मंत्री-पद के मोह में पार्टी बदलनेवाले नेता भी मौजूद हैं । "टूटते परिवेश" में श्री विष्णु प्रभाकर ने ऐसे एक नेता का चित्र अंकित किया है । प्रसिद्ध गांधी भक्त विश्ववर्जात के पुत्र के बारे में उसकी बेटी दीप्ति का कथन है - "पापा, जबसे दीपक भैया ने अपना दल छोड़कर मुख्यमंत्री के दल का साथ दिया है, तब से उनके मन्त्री बनने की बड़ी चर्चा है । शायद आज रात को ही घोषणा हो जाय ।"[3]

---

1. भूजमोहन शाह - त्रिशंकु - पृ. 88
2. लक्ष्मीनारायण लाल - अब्दुल्ला दीवाना - पृ. 82
3. विष्णु प्रभाकर - टूटते परिवेश - पृ. 22

इस दल-बदल की भावना के कारण देश में स्थिर शासन का अभाव होगा । इसके कारण दो या तीन दिन के लिए मंत्री रहकर ये नेता "पूर्व-मंत्री" के रूप में जनता के सामने प्रत्यक्ष हो जाते हैं । ऐसे मंत्रियों के प्रति जनता के मन में विरोध एवं घृणा की भावना ही है । ये झूठे नेता जनता के लिए कोई आवश्यक कार्य नहीं करते । लेकिन ये फिर चुनाव जीतने की बात कहकर जनता के पास आते हैं । श्री शंकर शेष ने "कालजयी" में नित नये-नये दल बनाने में लगे हुए हमारे राजनीतिज्ञों का यथार्थचित्र उपस्थित किया है । अब तो मंत्रिमंडल का टूटना कोई विशेष खबर नहीं रही । यह तो रोज़ ही होता है ।

चुनाव के हथकंडे

हमारे देश में शासक बनने के लिए चुनाव जीतना चाहिए । यहाँ अठारह साल के ऊपर का हर व्यक्ति - चाहे वह शिक्षित हो या अशिक्षित, स्त्री हो या पुरुष, गरीब हो या अमीर - मतदाता है । इसलिए किसी भी मूल्य पर इन मतदाताओं को अपने पक्ष में करने के लिए ये नेता कोशिश करते रहते हैं । वोट पाने के लिए किसी भी तरीके को अपनाने से वे हिचकते नहीं । शिक्षित लोगों से उतनी जल्दी वोट नहीं पा सकते, जितनी जल्दी अशिक्षितों से । अनपढ़, गरीब एवं निम्नवर्ग की पीड़ित जनता को धोखा देकर, उन्हें बहकाकर ये धोखेबाज़ नेता उन्हें अपने पक्ष में कर लेते हैं । ये मत पाने के लिए कभी-कभी रुपये देते हैं तो कभी-कभी धमकी देते हैं, पिस्तौल दिखाते हैं । श्री लक्ष्मीनारायण लाल ने "राम की लड़ाई" में ऐसे धोखेबाज़ नेताओं का मुखौटा उतार दिया है । इसमें इलक्शन के समय अपने पिता को धमकी देने आये नेताओं के बारे में विमला का कहना है - "इलक्शन के पिछले रात की ।

उस दिन सुबह से तीनों पार्टियों के लोग झोले में रुपये, पिस्तौल, हथगोला भरे पिताजी के पास आते रहें । हर तरह से दबाव डालकर अपने हक में वोट लेने के लिए ।"[1]

आजकल "राजनीति" एक पेशे की तरह है । श्री सुशीलकुमार सिंह ने "सिंहासन खाली है" में ऐसे नेताओं पर तीखा व्यंग्य किया है जो राजनीति को एक पेशा मानकर, पद-ओहदों का बंटवारा करते हैं । इसमें नेता चुनाव जीतने के लिए, अपने विरोध करनेवाले लोगों को ऊँचे पद देने का वादा करता है । नेता का कहना है - "भाइयों मैं विश्वास दिलाता हूँ कि सिंहासन पर बैठते ही सर्वोच्चपद मैं तुम लोगों में ही वितरित करूँगा । आप लोगों को कोई भी शिकायत नहीं होगी । और देश की सुख-संपदा हम सब मिल-बाँटकर खा सकेंगे ।"[2] आज हमारे देश के नेता भी मिलकर जनता को धोखा देते हैं , देश की सम्पत्ति हडपते हैं ।

आज एम.एल.ए, एम.पी या मंत्री के रूप में चुनाव लडने के लिए कोई निश्चित शैक्षणिक योग्यता की भी ज़रूरत नहीं । निश्चित उम्र की पूर्ति ही काफी है । इसलिए ही देश में निरक्षर शिक्षा-मंत्री तथा अस्वस्थ स्वास्थ्य मंत्री बन सकते हैं । इस प्रकार देश में विभिन्न पदों पर अयोग्य व्यक्ति की नियुक्ति हो जाती है और योग्य व्यक्ति मूल्यहीन रह जाते हैं तथा देश का धन और पद, अयोग्य, चरित्रहीन एवं धोखेबाज नेताओं के द्वारा व्यय किये जाते हैं । वे कई प्रकार के प्रलोभन देकर विरोधी पक्ष के लोगों को

---

1. लक्ष्मी नारायण लाल - रात की लडाई - पृ. 28
2. सुशील कुमार सिंह - सिंहासन खाली है - पृ. 48

भी अपने पक्ष में कर लेते हैं । "सिंहासन खाली है" में अपने पक्ष के लोगों के बारे में नेता का कथन है - "कुछ अपने, कुछ किराये के और कुछ विरोधी पक्ष के लोगों को तोड लिया है । यह तो चुनाव है, और चुनाव में हर प्रकार के हथकंडे अपनाने की छूट तो दी ही जाती है वरना ।"[1]

भोली-भाली जनता का वोट पाकर चुनाव जीतने के लिए नेता लोग मीठे-मीठे वचनों के झूठे आश्वासन देते हैं, जैसे :— "चाँदी की खेती करेंगे, सोने के पेड लगायेंगे, जनता के लिए घी और दूध की नदियाँ बहा देंगे, हीरे जवाहरात उगायेंगे ।"[2] "बकरी" में जनसेवक का लिबास धारण करनेवाला डाकू कर्मवीर चुनाव लडने का फैसला लेते ही जनता को अपने वश में लाने का उपाय सोचता है । वह भी जनता से - चुने जाते ही गाँव तक की सडक पक्की करा देने का और सडक पर पानी नहीं भरा देने का वादा करता है ।

ये नेता इतने चालक होते हैं कि वे चुनाव जीतने के लिए नये नये तरीके अपनाते हैं । जिन बुनियादी ज़रूरतों से जनता वंचित रह जाती हैं, ये उनका झूठा आश्वासन देते हैं । इसलिए गरीबी से पीडित व्यक्ति के सामने भूख से राहत देने का वादा देते हैं । श्री नरेन्द्र कोहली ने "शंबूक की हत्या" में दशरथ को आधुनिक राजनेता और विश्वामित्र को भूखे वोटदाता के रूप में चित्रित करके इस स्थिति पर करारा व्यंग्य किया है । राजा दशरथ वोट पाने के लिए विश्वामित्र से वनस्पति और घी देने का तथा राक्षसों को मार डालने का वादा करता है ।[3] निम्नवर्ग की अशिक्षित जनता को नेता खाली-

---

1. सुशीलकुमार सिंह - सिंहासन खाली है - पृ. 41-42
2. सुशीलकुमार सिंह - सिंहासन खाली है - पृ. 59
3. नरेन्द्र कोहली - शंबूक की हत्या - पृ. 27

पिछडी ज़मीन पर इण्डस्ट्री खोलकर, हज़ारों बेकार लोगों को नौकरी दिलाने का वादा देता है ।[1] ये जनता को "प्यारी जनता" तथा "भोली हिरनी" कहकर उन्हें निडर हो जाने का आश्वासन देते हैं ।[2]

नेताओं में इतनी चतुराई होती है कि वे भोली-भाली जनता को विश्वास दिलाते हैं, जनता की सेवा करना उनका एकमात्र लक्ष्य है । नेता दावा करता है - "स्वागत-समारोह की भी आवश्यकता नहीं है । मैं तो आपके बीच का आदमी हूँ । आपका एक तुच्छ सेवक देश की पीडित और शोषित जनता ! गरीबी, भुखमरी और बेरोज़गारी से कराहते हुए देश-वासियों ! यह तुच्छ सेवक हृदय से आप सबका आभारी है । इतने बडे दायित्व का भार मेरे कन्धे पर रखकर आपने मुझे अपने अपूर्व स्नेह, श्रद्धा और सम्मान के बोझ से दबा दिया है ।"[3] ये नेता जनता की उन्नति और तरक्की के लिए नये नये कल-कारखानों का उद्घाटन करने का, भारी लगतों के बडे-बडे बांधों का शिलान्यास करने का, सूखा, बाढ, अकाल और भूकम्प से पीडित क्षेत्रों का दौरा करने का, टैक्स तथा करों का नामोनिशान मिटा देने का, विदेशों से भारी सहायता प्राप्त करने का और धरती पर स्वर्ग उतार देने का वचन देकर, इन अनमोल वचनों की भीनी-भीनी फुहार से देश की गरीबी, भुखमरी, बेरोज़गार और तमाम समस्याओं को पलक झपकते ही सुलझा देने का वादा देते हैं ।

श्री ज्ञानदेव अग्निहोत्री ने "शुतुरमुर्ग" में आज की राजनीति के उस स्वरूप पर व्यंग्य किया है, जहाँ बडी-बडी योजनाएँ हैं, आश्वासन

---

1. लक्ष्मीनारायण लाल - रक्तकमल - पृ. 64
2. सुशीलकुमार सिंह - आज नहीं तो कल - पृ. 18
3. सुशीलकुमार सिंह - सिंहासन खाली है - पृ. 12

और झूठे वादे हैं, झूठी उम्मीदें हैं, निर्माण के दिखावे हैं । इसमें राजा शुतुर-नीति को अपनाकर मंत्रियों से लेकर जनसामान्य तक को धन के ऐश्वर्य या अन्य उपायों से खरीदकर सत्य को नकारने के लिए विवश कर देता है, जिससे उसका सिंहासन सुरक्षित रहे । चौबीस वर्ष तक निरीह जनता का सुनहले भविष्य की आशा में शोषण करता रहा - शुतुरमुर्ग का निर्माण उन योजनाओं का प्रतीक है, जो वर्तमान सरकार जनता को हर चुनाव पर देती रही, पर कागज़ी रूप में । लेकिन इस स्वार्थपूर्ण नीति ने देश को धन और प्रतिभा की दृष्टि से खोखला कर दिया है । सुशीलकुमार सिंह का नाटक "नागपाश" में नेता सब लोगों के लिए छोटे-छोटे, प्यारे-प्यारे खूबसूरत भवन बनाने का वादा करता है ।[1]

श्री शुद्धाराक्षस ने "आला अफसर" नाटक में एक "कव्वाली"[2] चुनावी हथकंडे पर तीखा व्यंग्य किया है । उनकी राय में गरीबों का कलेजा तक खा लेनेवाले नेताओं के कारण आज हमारी सड़क भी बेरोज़गारों के पसीने से गीली हो गयी है । ये चुनाव के समय जनता को अनेक वादा देते हैं । ये सब लोगद्दी मिलने के लिए ही करते हैं ।

कुछ नेता ऐसे हैं, जो जाति-पाँति की दुहाई देते हुए जनता को विभिन्न तहों में बांटते हैं । श्री सुशीलकुमार सिंह ने "आज नहीं तो कल" में ऐसे झूठे नेताओं की असलियत दिखा दी है । इसमें "पाँच" ऐसा ही एक नेता है जो हरिजन और पिछड़े वर्ग के संरक्षक के रूप में आते हैं । वे हरिजनों का हितैषी बनने का नाटक रचते हैं - "हरिजन समस्या इस देश की सबसे बड़ी

---

1. सुशीलकुमार सिंह - नागपाश - पृ. 23
   शुद्धाराक्षस - आला अफसर पृ. 62-63

तमस्या है, और एक महत्वपूर्ण कुंजी है सत्ता में बने रहने के लिए इसलिए सुबह शाम हरिजनों का नाम जपो..... हरि मिल जायेगा.... जन की परवाह मत करो ।" [1] ये अवसरवादी नेता चुनाव के समय, धर्म पर आस्था रखनेवाले लोगों के पास कभी-कभी अवतारपुरुष के वेश में भाषण और अभिनय करके वोट माँगते हैं । इस हास्यास्पद स्थिति का खाका लक्ष्मी नारायण लाल ने "राम की लडाई" में खींचा है ।

चुनाव जीतने के लिए ये नेता विभिन्न प्रकार की चाल चलाते हैं । कोई भी पार्टी चुनाव तभी जीत सकती है जब उनकी साफ-सुथरी आर्थिक स्थिति हो और अपनी पार्टी तथा दलों को संगठित करने में सफल हो । कभी-कभी ये नेता विरोधी पक्ष के लोगों को चुनाव प्रचार का भी अवसर नहीं देते । ये कूटनीतिज्ञ शासक अपने विरोधियों को जेलों में बन्द कर देते हैं और चुनाव की घोषणा के बाद ही उन्हें जेलों से छोड देते हैं । इस प्रकार करने से विरोधी पार्टी के नेताओं को न तो चुनाव प्रचार के लिए समय मिलेगा और न ही वे चुनाव के लिए धन इकट्ठा कर सकते हैं । इसलिए वे अपने दल को भी संगठित नहीं कर सकते । इसके परिणाम स्वरूप उनकी बुरी तरह हार होगी । सुशील कुमार सिंह ने 'नागपाश' में ऐसे कूटनीतिज्ञ [2] शासकों का मुखौटा उतार दिया है ।

चुनाव जीतने के लिए ये धोखेबाज़ नेता तथा मंत्री सरकार के कर्मधारियों से अनैतिक कार्य कराते हैं । इनके लिए कलक्टर जैसे उच्च अधिकारी चुनावी खर्च के लिए आम जनता से और व्यवसायियों से रुपये जमा करते हैं ।

---

१. सुशील कुमार सिंह - आज नहीं तो कल - पृ. 18

२. सुशील कुमार सिंह - नागपाश - पृ. 61

डॉ. लक्ष्मी नारायण लाल के "मिस्टर अभिमन्यु" का कलक्टर राजन् अपने उच्च अधिकारियों के इशारे पर नाचने के लिए मज़बूर हो जाते हैं । राजन की सेवा मंत्री कितना संतुष्ट है - "मिस्टर राजन्, आपके काम से हमें बहुत खुशी है, तभी आपको इतनी इम्पार्टेन्ट कमीशनरी का चार्ज दिया जा रहा है । आनेवाले जनरल एलक्शन के लिए वहाँ से आपको बारह लाख रुपयों का इन्तज़ाम करना है ।"[1] किसी भी अनैतिक राह को अपनाते हुए अपनी चुनाव पेटी और जेब भरने की कोशिश में लगे हुए राजनीतिज्ञों की धोखेबाजी का सच्चा चित्र नरेन्द्र कोहली ने "शम्बूक की हत्या" में उपस्थित किया है ।

रिश्वतखोरी

ये भ्रष्टाचारी शासक अपने विरोध करने वाले लोगों को रिश्वत देकर चुप कराने की कोशिश करते हैं । "शुतुरमुर्ग" में ज्ञानदेव अग्निहोत्री ने इसका चित्रण किया है । इसमें जब विरोधीलाल शासकों की कूटनीति का विरोध करता है तो राजा स्वर्णमुद्राएँ देकर उसका मुँह बन्द कराना चाहता है । इसी प्रकार पत्रकारों को भी वे रिश्वत् देकर चुप कराते हैं ।

लाल के "रक्तकमल" के महावीर जैसे अमीर व्यवसायी लोग इनकमटैक्स से बचने के लिए हज़ारों रुपये मंत्री लोगों को घूस देते हैं । इसके माध्यम से नाटककार ने भारत की बिगड़ी हुई स्थिति का परिचय दिया है । सड़क के किनारे दूकान खोलने के लिए चेयरमैन जैसे अधिकारियों को रिश्वत् देनेवाले लोगों का यथार्थ चित्र मुद्राराक्षस ने "आला अफ़सर" में अंकित किया है । इसमें चेयरमैन से धोखे कहता है - "चन्दू हज्जाम सरकारी ज़मीन पर अपनी दूकान

---

1. लक्ष्मी नारायण लाल - मिस्टर अभिमन्यु - पृ. 6

खोलने के लिए आपको दो सौ रूपया दे रहा था और आप उससे पाँच सौ ।"[1] लेकिन वे इसके बारे में कहना पसन्द नहीं करते । चुपचाप अपने हाथ म रिश्वत् रख देना ही पसन्द करते हैं । इस घूसखोरी के कारण आम जनता को बहुत पीडा सहनी होती है ।

नरेन्द्र कोहली ने "शम्बूक की हत्या" में रिश्वत् को शराब की तरह माना है । क्योंकि रिश्वत् भी शराब जैसा है जिसे हम एक बार लें तो फिर उसकी प्यास और भी बढ़ जाती है । कभी तृप्ति नहीं होती । आज हर क्षेत्र में रिश्वत् का बोलबाला है । समाज के विभिन्न क्षेत्रों में फैली रिश्वत्खोरी की ओर सक्सेना ने "लडाई" में संकेत किया है । आज स्थिति ऐसी हो गयी है कि राशन कार्ड बनवा लेने के लिए राशन के इन्स्पेक्टर को रिश्वत् देनी चाहिए । "लडाई" के सत्यव्रत को राशन कार्ड न मिलने का यही कारण था । राशन कार्ड न मिलने की शिकायत सुनने के लिए भी दफ्तर के अधिकारी तैयार नहीं होते क्योंकि हरेक अन्याय को सिद्ध करने के लिए सबूत की ज़रूरत है । आज देश की स्थिति यहाँ तक हो गई है कि यहाँ किसी दफ्तर में प्रवेश करने के लिए वहाँ के चपरासी को घूस देनी है । दयाप्रकाश सिन्हा ने "इतिहास चक्र" में ऐसी स्थिति पर तीखा व्यंग्य किया है । इसमें चपरासी कहता है - न जाने कहाँ से नंगे कंजूस चले आते हैं । जेब में पाँच रूपये का नोट भी नहीं और मिलेंगे करोडपति सेठ से ।"[2] उनकी राय में "यह रिश्वत् नहीं है, बडी ड्योढी की छोटी दस्तूरी है ।"[3]

---

1. मुद्राराक्षस - आला अफसर - पृ. 41
2. दयाप्रकाश सिन्हा - इतिहास चक्र - पृ. 43
3. दयाप्रकाश सिन्हा - इतिहास चक्र - पृ. 43

यों देश के राजनैतिक माहौल पर नज़र डालने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि देश के कर्णधार कहे जानेवाले नेता राजनीति के क्षेत्र में कदम रखते ही किसी भी अनैतिक राह को अपनाने में न हिचकते, चाहे वह चापलूसी की हो, रिश्वतखोरी की हो, खून की हो, स्वार्थ या अवसरवाद की हो । वे सब इसलिए कर रहे हैं कि उनमें सत्ता के प्रति कभी न दबनेवाला मोह है ।

सत्ता का मोह

सत्ता के भूखे होने के कारण इन नेताओं को हमेशा सत्ता हथियाने की चिन्ता रहती है और सबको अपना रोब दिखाने की रुचि रहती है

सत्ता प्राप्ति के लिए आज के नेताओं में एक प्रकार की होड मची रहती है । सुशीलकुमार सिंह के "सिंहासन खाली है" में इसका बडा ही व्यंग्यपूर्ण चित्र उभारा गया है । इसमें सिंहासन पर बैठने योग्य सुपात्र की खोज करते समय महिला अपने पति से, पहले ही जाकर सिंहासन को अपनाने को कहती है । वह कहती है - "चलिए, उठिए, हम मंच पर चलें - अजी जल्दी कीजिए न, कहीं और लोग भी न पहुँच जाएँ ।"[1] पति को मंत्री बनाने के लिए पत्नी कितनी आतुर रहती है, इस बात की ओर भी नाटककार ने इसमें अपना व्यंग्य बाण छोडा है । सत्ता और सिंहासन के संघर्ष का कभी अंत नहीं होगा । लाखों करोडों बेकसूर जिन्दा इन्सानों को, मुर्दा जिस्मों में बदलकर ही आज नये साम्राज्यों का निर्माण हुआ है । इन साम्राज्यों की सीमाएँ भी इस प्रकार ही फैल रही है ।

---

1. सुशील कुमार सिन्हा - सिंहासन खाली है - पृ. 7

इन सत्तामोही शासकों में लाज-शर्म जैसी चीज़ ही नहीं है । श्री नरेन्द्र कोहली की राय में "राजा दशरथ ने पुत्र के वियोग में प्राण त्याग दिये । लेकिन आज के लोग केवल कुरसी के वियोग में प्राण त्याग देते हैं ।"[1] सत्ताप्राप्त व्यक्ति अन्तिम साँस तक उससे चिपके रहना चाहता है तथा दूसरों को उस सत्ता से वंचित करने का भी प्रयत्न करता है जिससे केवल वही एक, सब सुखों को प्राप्त कर सके । श्री शंकर शेष ने "कालजयी" में सत्ता के ऐसे भूखे शासकों का यथार्थ चित्र उपस्थित किया है । ये लोग सत्ता पर प्राण देनेवाले हैं, षड्यन्त्र करनेवाले हैं । इस नाटक में मृत्युंजय का कहना है — "शासन से षड्यन्त्रों को कभी निर्मूल नहीं किया जा सकता क्योंकि इनके शासन का उदय ही षड्यन्त्र के परिणाम स्वरूप हुआ है ।"[2] ऐसे शासकों को केवल हथियारों से ही मतलब है, सिद्धान्तों से नहीं । उनका केवल एक ही सिद्धान्त है - सत्ता में बने रहना इनके मन में हज़ार, लाख, करोड़ों वर्षों तक शासन करने की चाह है । "कालजयी" कभी अमर नहीं है, सत्तामोह के कारण सब कालजयी का मुखौटा बनाकर राजा बन जाता है । मतलब यह है कि सत्ता की पिपासा ही "कालजयी" को जन्म देती है । लेकिन यह सत्ता-मोह व्यक्ति को पतन की किसी भी सीमा तक ले जा सकता है, उसे पशु बना सकता है । जब तक एक व्यक्ति के हाथ में सत्ता होगी - कालजयी बनने का क्रम अनन्तकाल तक चलता रहेगा ।

श्री दुष्यन्त कुमार ने "एक कंठ विष पाई" में, शासन और सत्ता के लिए जनता को दण्ड देनेवाले, सत्ता-मोह में अन्धे बन गये शासकों पर तीखा व्यंग्य किया है । देश का हर नेता भूखा है । कोई अधिकार-लिप्सा का भूखा है तो कोई प्रतिष्ठा का, कोई आदर्शों का और कोई धन का भूखा होता है ।

---

१. नरेन्द्र कोहली - शम्बूक की हत्या - पृ. 25

२. शंकर शेष - कालजयी - पृ. 13

"मरजीवा" में मुद्राराक्षस ने सत्ता पाने के लिए षड्यन्त्र करनेवाले लोगों पर करारी चोट की है । अपने पक्ष को प्रबल करने के लिए शिवराज गंधे जैसे भ्रष्ट मंत्री का अपने ही भाई के विरुद्ध षड्यन्त्र करना उसकी स्वार्थता की ओर संकेत करता है । इसमें शिवराज गंधे का यह कथन — "इतने भुगालते में नहीं रहता । आई वाण्ट पावर वन्स अगेन । जूट लाबी ने निकलवाया है मुझे । मेरी लाबी इतनी आसानी से नहीं हारती । आई शैल फोर्स दि प्राइम मिनिस्टर । प्रधानमंत्री को भी पीछे हटना होगा ।"[1] — भी नेताओं के सत्ता मोह के लिए उदाहरण है । उन्हें कुरसी ही प्यारी है । लेकिन कुरसी पर बैठ जाते ही प्रजा को भूल जाते हैं । सुशील कुमार सिंह ने "आज नहीं तो कल" में ऐसे निर्लज्ज नेताओं की हँसी उठायी है जिन्हें सत्ता से बाहर निकालने की कोशिश करें तो भी वे बाहर नहीं निकलते । इसमें "एक" का कथन है - "है कोई माई का लाल, जो मुझे कुरसी से उठा सके ।"[2]

सत्ता पाने के लिए सारे नेता लालायित हैं । सत्ता के लिए वे विरोधियों से भी समझौता करने को तैयार हो जाते हैं । ऐसे नेताओं का सही चित्र मणिमधुकर के नाटक "रसगन्धर्व" में उभारा गया है । इसमें "स" से अफसर कहता है - "तुम्हारे और मेरे बीच यह समझौता हो चुका है कि हम राजसत्ता का मिलकर उपभोग करेंगे ।"[3] इस प्रकार आज हमारे देश में भी नेता लोग मिलकर देश को लूटते हैं और आम जनता को धोखा देते हैं ।

---

1. मुद्राराक्षस - मरजीवा - पृ. 77
2. सुशीलकुमार सिंह - आज नहीं तो कल - पृ. 27
3. मणिमधुकर - रसगन्धर्व - पृ. 43

ये नेता सत्ता के मोह में कांटों से भरा जीवन बिताते हैं । अधिकार पाने के लिए उन्हें कई मुसीबतों को झेलना पड़ता है । इनके जीवन में कभी शांति नहीं, ये न ठीक से खा पाते हैं, न सो पाते हैं । ये दिन-रात काम और चिन्ता में मग्न रहते हैं । इसकी सही तस्वीर श्री दयाप्रकाश सिन्हा ने "इतिहास चक्र" में पेश की है । इसमें अपने सेवक के रूप में जनता के पास आनेवाले नेताओं के बारे में सूत्रधार का कथन बिलकुल सही है - "यह आपके सेवक नहीं, केवल धन के सेवक हैं । धन, वह चाहे रुपया हो, डालर या पाउंड हो, येन या फ्रेंक हो, इनका देवता है ।"[1] सत्ता का यह संघर्ष सनातन काल से चलता आ रहा है, चलता रहेगा । दयाप्रकाश सिन्हा ने "कथा एक कंस की" में इस कटु सत्य की ओर संकेत किया है कि सत्ता और अधिकार के मोह में लोग अपनी हैसियत पर खुद लांछन लगाते हैं । अधिकार-मोह के कारण अपने को महाराज उग्रसेन का जारज पुत्र कहकर, अराज स्थापित करके कंस के हाथ से सत्ता छीनने की "प्रलंब" की कोशिश में उसकी यही मानसिकता काम कर रही है ।

आज की सरकार भाषण, आन्दोलन आदि के बल पर टिकी हुई है । शासकों के लिए यह अत्यंत महत्वपूर्ण बात है कि हमेशा उसे जनता को उत्तेजित कराने के लिए निरन्तर यह अनुभव कराते रहना है कि सरकार उसकी हितैषी है, उसकी भलाई के लिए ही हमेशा कार्य कर रही है । नेताओं का यह भाषण यदि एक ओर प्रेरणादायी और ओजस्वी हो सकता हैं तो दूसरी ओर कोरा वाग्जाल । यह, भाषण के महत्व को कम करता है और ऐसे भाषण से जनता को नेताओं पर व्यंग्य करने का अवसर भी प्राप्त होता है । लक्ष्मीकांत वर्मा के "रोशनी एक नदी है" में नेताओं के भाषण पर व्यंग्य करते हुए कुमकुम

---

1. दयाप्रकाश सिन्हा - इतिहास चक्र - पृ. 14

कहता है - "वह भाषण इतने बड़े-बड़े शब्द प्रजातन्त्र जम्हूरियत..... इन्सानियत..... आत्मा की आवाज़..... समाजवाद..... गरीबी हटाओ (व्यंग्य की हँसी हँसती है) गरीबी हटाओ.... ह.... ह..... जैसे गरीबी कोई फाइल है..... दस्तख़त करो, हटाओ ।"[1]

राजनीतिज्ञ कभी व्यक्ति से समाज बनाना नहीं चाहता । वह व्यक्ति को भीड़ में बदलना चाहता है । भीड़ तो निरी फूस का ढेर है जो थोडी सी चिनगारी पडने पर भभक उठेगी । इसलिए ये राजनीतिज्ञ अपनी पार्टी को बनाने के लिए और दूसरी पार्टी को बिगाडने के लिए जुलूस, सत्याग्रह आदि का आयोजन करते हैं । आन्दोलनों, हडतालों और नारेबाजी से युक्त परिवेश में साधारण व्यक्ति का जीना भी मुश्किल हो गया है । इनके प्रभाव से वह भी क्रांति, नारों, जुलूस और आन्दोलनों द्वारा ही अपना व्यक्तित्व अर्जित करता है । "रोशनी एक नदी है" में श्री लक्ष्मीकांत वर्मा ने इस जलते सत्य की ओर इशारा किया है । इसमें नीरद कहता है - "तो सुनो, तुम सब जुलूस हो, जुलूस..... तुम नारा हो । हडताल हो, आन्दोलन हो..... और मैं कहता हूँ कि चूँकि तुम सब लोग यह सब हो, इसलिए जुलूस हो झण्डे हो पताके हो..... (सहसा रुककर कुछ सोचते हुए सिर खुजलाते हुए) लेकिन लेकिन आदमी कहाँ हो (फिर कुछ रुककर) शायद आदमी नहीं हो..... आदमी नहीं हो..... शायद आदमी नहीं हो.....।"[2]

---

1. लक्ष्मीकांत वर्मा - रोशनी एक नदी है - पृ. 41-42
2. लक्ष्मीकांत वर्मा - रोशनी एक नदी है - पृ. 50

आज देश में आदमी का कोई मूल्य नहीं है । अर्थहीन नारे लगाने के कारण ये जुलूस पूर्णतः निरर्थक प्रतीत होते हैं । आखिर जुलूस भी एक भीड़ हैं, आदमियों की भीड़ । जुलूस को देखकर यह जानना आसान नहीं कि यह जुलूस क्यों हो रहा है क्योंकि देश में राष्ट्रपति या मिनिस्टर की सवारी निकलते समय, या किसी की मृत्यु के समय भी ऐसी भीड़ हो रही है । इस यथार्थ का बडा ही व्यंग्यपूर्ण चित्रण "रोशनी एक नदी है" में हुआ है । इसमें जुलूस की ओर संकेत करके लडकी कहती है - तो क्या फर्क पडता है । भीड़ तो भीड़, शोर तो शोर चाहे बारात का हो, चाहे लाश ले जानेवालों का, सब में केवल आवाज़ ही होती है, शब्द नहीं होते, अर्थ नहीं होते"[1] तब वृद्ध का कहना है - "तुम्हारा मतलब जिसमें शब्द न हो, अर्थ न हो, सिर्फ शोर ही शोर हो, वह जुलूस होता है, भीड़ होती है ।"[2]

प्रजातंत्र का खोखलापन

सत्ता की खुमारी में मस्त चरित्रहीन राजनीतिज्ञों की संख्या राजनीति के क्षेत्र में पल-पल में बढ रही है और यह प्रजातंत्र के खोखलेपन का कारण बन जाता है । ऐसे आदर्शहीन राजनीतिज्ञों का अंधानुकरण करनेवाली नयी पीढी भी गुमराह होती है । उसकी ओर संकेत करते हुए विष्णु प्रभाकर ने स्पष्ट किया है - "राजनीति के स्तर पर जो नंगापन उभरा है उसका प्रभाव भी नयी पीढी पर पडा है । परन्तु वह प्रभाव भी स्वार्थ साधन की दूषित प्रेरणा देता है, उससे विमुख नहीं करता, न स्वस्थ और सुन्दर की खोज की ओर प्रेरित करता है ।"[3] पद और सत्ता प्राप्त करना, फिर प्राप्त पद का

---

1. लक्ष्मीकांत वर्मा - रोशनी एक नदी है - पृ. 13
2. लक्ष्मीकांत वर्मा - रोशनी एक नदी है - पृ. 13
3. विष्णु प्रभाकर - टूटते परिवेश - दो शब्द - पृ. 5

संरक्षण करना, उसके लिए षड्यन्त्र रचना आदि नेताओं की करतूतें हैं । इसके बारे में श्री कृष्णनाथ का विचार है -- अगर सरकारी दल में है तो एम. एल. ए, एम. पी. बनकर, उपमंत्री, मंत्री बनने के चक्कर में हैं, और अगर विरोधी दल में है तो जैसे भी हो गद्दी तक पहुँचने के लिए उतावले हैं, या अगर वह न भी हो तो अपने क्षेत्र में और अपनी असेंबली, पार्लमेन्ट में मस्त हैं । क्षेत्र बने, सुरक्षित रहे, और असेंबली पार्लमेंट में भाषण हो, छपे पढा जाय या पढवाया जाय । यही अलम् है ।"[1]

हमारे संविधान में कहा गया है -- "सभी नागरिकों को वाक्-स्वातंत्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य का, शांतिपूर्वक और निरायुध सम्मेलन का, संगम और संघ बनाने का, भारत के राज्यक्षेत्र में सर्वत्र अबाध संचरण का, भारत के राज्यक्षेत्र के किसी भाग में निवास करने और बस जाने का और कोई वृत्ति, उपजीविका, व्यापार या कारोबार करने का अधिकार होगा ।"[2] इन अधिकारों का अनुचित नियंत्रण या दुरुपयोग करने से स्वतंत्रता का मूल्य नष्ट हो जायेगा । 1947 तक भारत परतन्त्र था, इसलिए हमें कोई भी अधिकार प्राप्त न था । स्वतंत्रता के बाद देशवासी अपने अधिकारों के बारे में सोचते थे । लेकिन शासन के गोरों से कालों के हाथ में आने के बाद भी भारतीय स्वतंत्र नहीं हो गये । आज की आज़ादी का तात्पर्य है कि व्यक्ति, अपनी आशाओं को ही गिरवी रख दें । "आज़ादी" आज विभिन्न समस्याओं का पर्याय है । गरीबी और बेरोज़गारी ही आज़ादी की साथिन हैं ।

---

1. कृष्णनाथ - बुद्धिजीवी और परिवर्तन की राजनीति - नई धारा - पृ. 4, अगस्त 1968.
2. Constitution of India; Article- 19- P.6.

विश्वास किया जाता है कि "प्रजातंत्र" जनता के द्वारा, जनता के लिए, जनता का शासन है । लेकिन आज यह जनता के द्वारा जनता के शोषण के रूप में बदल गया है । युगीन राजनीति में प्रजातंत्र की हत्या हो रही है, अर्थात् प्रजातांत्रिक विचारधारा आज पतन के कगार पर खडी है । जनतंत्र के नाम पर, जनता के कल्याण के स्थान पर नेता वर्ग उसे लूट रहे हैं ।

प्रजातंत्र में शासक जनता को कभी दिशाहीन नहीं करता । लेकिन श्री लक्ष्मीनारायण लाल की राय में आज का प्रजातंत्र ऐसा है कि मनुष्य को वैयक्तिक और सामाजिक दोनों स्तरों पर निर्वीर्य कर, उन्हें शव बना देने की प्रक्रिया ज़ारी रहती है । लाल के नाटक "कलंकी" में साधारण जनता के शोषण का चित्र प्रस्तुत किया गया है । ये सहज विश्वासी और प्रश्नहीन लोग हैं, जो ऐसा नेता चाहते हैं, जो शासन करने के साथ-साथ उन्हें शासित होने योग्य भी बनाये रखें । सोचने में भी असमर्थ, जीवन बोध से रहित लोग ही आज के जनसामान्य का प्रतिनिधित्व करते हैं । इसमें अकुलश्रेम उसकी मृत्यु के पश्चात् अवधूत बनकर आता है । संवादों द्वारा उसके निरंकुश सामन्ती व्यक्तित्व पर प्रकाश पडता है, जिसने धर्म, तन्त्र और शिक्षा संस्थानों का आश्रय लेकर लोगों की चेतना को नष्ट करने का प्रयत्न किया ।

भारत के संविधान में "राज्य की नीति के निदेशक तत्व" के अन्तर्गत यह व्यक्त किया गया है - "राज्य, विशिष्टतया, आय की असमानता को कम करने का प्रयास करेगा और न केवल व्यष्टियों के बीच, बल्कि विभिन्न क्षेत्रों में रहनेवाले और विभिन्न व्यवसायों में लगे हुए लोगों के समूहों के बीच

---

1. लक्ष्मी नारायण लाल - कलंकी - पृ. 16

भी प्रतिष्ठा, सुविधाओं और अवसरों की असमानता समाप्त करने का प्रयास करेगा ।"[1] लेकिन इसके विपरीत बातें ही आज देश में हो रही हैं ।

श्री ज्ञानदेव अग्निहोत्री ने "शुतुरमुर्ग" नाटक में वर्तमान राजसत्ता के खोखलेपन व कागज़ी योजनाओं से, जनता की भावनाओं से खिलवाड करनेवाले शासकों पर अपना सारा आक्रोश व्यंग्यपूर्ण शैली में उभारा है । मनुष्य की शुतुरमुर्गी प्रवृत्ति या पलायन की प्रवृत्ति शासन तन्त्र के लिए सहायक बनती है । इसमें राजा, शुतुरमुर्ग का स्वर्ण-बिंब बनाकर आम जनता को अकाल से पीडित करता है । भुखमरी को मिटाने के उत्तरदायित्व से बचने के लिए भूख को "एक मानसिक स्थिति" घोषित करता है । "भूख अब एक शारीरिक स्थिति नहीं है, बल्कि मन:स्थिति मानी जायेगी । पेट में भूख लगकर मरने का राज्य जिम्मेदार है । परन्तु मस्तिष्क में भूख लगने का नहीं । और चूँकि हमारी घोषणा के अनुसार भूख सिर्फ मस्तिष्क को लग सकती है । अत: इस नयी परिभाषा के अनुसार सदैव भूख-समस्या का अन्त, सत्यमेव जयते ।"[2] निरीह, पीडित जनता की समस्याओं की ओर शासक या नेता ध्यान नहीं देते । इसलिए उनकी समस्याओं का समाधान नगण्य रहता है । बडी-बडी समस्याओं का हल केवल "कमीशन की नियुक्ति करके रिपोर्ट लिखवाने तक ही सीमित रह जाता है । ऐसी स्थिति पर भी "शुतुरमुर्ग" में नाटककार ने व्यंग्य किया है । इसमें भूख-समस्या का हल माँगती जनता को केवल "भूख-समस्या-कमीशन" से तृप्त होना पडता है ।

---

1. Constitution of India Part IV, 38-2-P-13.
2. ज्ञानदेव अग्निहोत्री - शुतुरमुर्ग - पृ. 58

श्री नरेन्द्र कोहली ने प्रजातंत्र के बदलते चेहरे का बखूबी चित्रण अपना नाटक "शम्बूक की हत्या" में किया है । स्वार्थी नेताओं ने देश की प्रगति और ऐश्वर्य की नयी परिभाषाएँ दी हैं । उनकी राय में देश की प्रगति का मतलब है कि फाइव-स्टार होटल और महंगे रेस्ट्रां तो नगर-नगर में कुकुरमुत्ते की तरह उग रहे हैं जहाँ मज़ा लूटने के लिए डिस्कोथेक, कैबरे डान्स, बड़े बड़े पिक्चर हॉल, नंगी फिल्म तारिकाएँ, भद्दे अशिष्ट प्रेमदृश्य आदि उपलब्ध हैं । नेताओं की आलीशान समाधियों की भी कोई कमी नहीं । कुछ नेताओं के लिए जीवन स्तर ऊँचा उठाने का तात्पर्य इस हद तक आया है कि जब लोगों के खर्च करने की क्षमता बढ़ती है तो खर्च बढ़ता है, खर्च बढ़ता है तो महंगाई बढ़ती है । इस प्रकार देश का विकास, उन्नति, समृद्धि आदि की कसौटी, बढ़नेवाली महंगाई है ।[1]

देश में यदि कोई दुर्घटना, तूफान, बवंडर, बाढ़, अकाल या सूखा हो गये तो नेता इसके लिए जाँच आयोग की नियुक्ति करते हैं फिर उस जगह को देखने के लिए हेलिकोप्टर से दौरा करते हैं और देश की संपत्ति का दुरुपयोग करते हैं । इसी हालत का बड़ा ही व्यंग्य पूर्ण चित्र श्री सुशील कुमार सिंह ने "आज नहीं तो कल" में उभारा है । त्योहार, उत्सव, विनोदयात्रा, विदेश-पर्यटन, खेल-तमाशा, शिलान्यास उद्घाटन समारोह आदि के नाम पर सरकारी सम्पत्ति नष्ट करनेवाले नेताओं की भरमार सभी पार्टियों में है । हमारे देश में प्रगति के स्थान पर आयी हुई दयनीय हालत का विश्लेषण करते हुए डॉ. बच्चन सिंह ने लिखा है - "हमारे देश में इस स्थिति के आने की प्रमुख जिम्मेदारी आज के खोखले लोकतंत्र की है । यह स्वाभाविक

---

1. नरेन्द्र कोहली - शम्बूक की हत्या - पृ. 44-45

अर्थ में लोकतंत्र नहीं, तंत्र-लोक है । इसका आरंभ उसी समय से हो जाता है जिस समय से व्यक्तिपूजा शुरू हुई । व्यक्तिपूजा से अभिभूत होने का फल यह होता है कि लोग शक्तियों का एक व्यक्ति में केन्द्रित कर देते हैं और उनका अपना कुछ नहीं रह जाता है ।"[1]

कलाकारों पर दबाव

आज राजनीति सभी क्षेत्र पर हावी है । कला, विज्ञान और धर्म उसके ही शिकंजे में है । कलाकार को प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना करते हुए, अपने अस्तित्व की रक्षा करनी पड़ती है । साहित्य या कला में जीवन के शाश्वत तत्वों और मूल्यों के समावेश के लिए, सच्चे और सफल साहित्यकार को समाज के प्रति अपने दायित्व को सजगता से निभाना चाहिए । जिस समाज में वे रहते हैं उस समाज के प्रति उनका दायित्व है, जिससे वे विमुख नहीं रह सकते । वे अपनी रचना द्वारा समाज को बदल भी सकते हैं । सच्चे कलाकार जीवन के मानों और मूल्यों को समझकर जीवन में उसका प्रयोग करने की कोशिश करते हैं और युगीन परिस्थितियों के अनुरूप उन मूल्यों की रक्षा करके उनके विकास के लिए सहायक बनते हैं । साहित्यकार को किसी दल या वर्ग से नहीं, समाज से प्रतिबद्ध होना चाहिए । नहीं तो वह किसी पार्टी या दल का प्रचारक मात्र रह जायेगा । हर साहित्यकार समाज से जुड़ा होने के कारण स्वयं प्रतिबद्ध हैं । सौन्दर्यानुभूति स्वतंत्रता से ही होती है । इसलिए साहित्यकार को स्वतन्त्र होकर रचना करनी चाहिए ।

लेकिन आज हमारे देश में कोई भी कलाकार स्वतंत्र नहीं है क्योंकि हमारे निरंकुश एवं क्रूर शासक, कलाकारों को भी स्वतंत्र नहीं

---

1. डॉ. बच्चन सिंह - गुमशुदा पहचान -तलाश की प्रक्रिया -

छोड सकता । श्री मोहन राकेश ने "आषाढ़ का एक दिन" में कालिदास के माध्यम से कलाकार की सृजनात्मक प्रतिभा की समस्या की ओर संकेत किया है । इस नाटक में कवि कालिदास कश्मीर का शासक बनकर चला, लेकिन सत्ता और सम्मान के मिलने पर भी वह सुखी नहीं हो पाता बल्कि अपने के खंडित एवं टूटा हुआ अनुभव करता है । कालिदास के माध्यम से आज की राजनैतिक स्थिति पर बल देते हुए नाटककार इसकी ओर संकेत करता है कि एक सृजनशील कलाकार किस तरह व्यवस्था द्वारा कुचल और तोड दिया जाता है । वर्तमान मूल्यबोध से युक्त असाधारण कवि या साहित्यकार न व्यवस्था को एकदम छोड पाता है और न उससे समझौता करते हुए चल पाता है । इसमें कालिदास के अंतर्द्वन्द्व के द्वारा आज के कलाकार के द्वन्द्व को दिखाया गया है ।

आज साहित्यकार के लिए सबसे बडी समस्या, एक साहित्यका के रूप में अपने व्यक्तित्व की रक्षा की है । एक कलाकार को कम से कम इतनी स्वतंत्रता मिलनी चाहिए कि वह राजनीतिज्ञ की गलत स्ट्रेटजी को गलत कह सके, उससे असहमत हो सके, क्योंकि स्वतंत्रता ही उसकी रचना को शक्ति देती है । इस नाटक में भी कालिदास के मन में राजकीय सम्मान स्वीकार करने से भी बडा प्रश्न है उससे उत्पन्न विरोधी स्थितियों का सामना करने का । यहाँ कालिदास राजकवि के पद से अधिक स्वतंत्रता की चाह रखनेवाला था । उसका यह वाक्य - "मैं राजकीय मुद्राओं से क्रीत होने के लिए नहीं हूँ ।"[1] - साहित्यकार के रचना-दायित्व, स्वाभिमान और स्वतंत्रता की गहरी इच्छा को व्यक्त करता है । अपनी भूमि व परिवेश से उखड़ कर वह कभी जी नहीं सकता । इससे उसका प्रेरणा-श्रोत सूख जाता है । इसलिए कालिदास कहता है - "नई भूमि सुखा भी

---

1. मोहन राकेश - आषाढ़ का एक दिन - पृ. 38

तो सकती है.....[1] इस डर के कारण ही वह राजकवि बनने के बाद भी अपने गाँव की वास्तविक भूमि से उखड न पाये, दूसरे जीवन की अपेक्षाओं से अपने आपको बाँध न पाये । उसे ऐसा लगा कि प्रभुता एवं सुविधा के मोह में पडकर उसने वहाँ अनधिकार प्रवेश किया है । आज हमारे देश में भी आर्थिक विषमता कलाकारों की सबसे बडी समस्या है ।

साहित्यकार को अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता है, लेकिन जब वह परंपरा से हटकर रचना करता है तो उसे हर ओर से उपेक्षा का पात्र बनना पडता है । राज्य और धर्म सब ओर से उसे हार माननी पडती है । सत्ता, कवि और काव्य का मूल्यांकन अपनी स्वार्थता को दृष्टि में रखकर करती है । सत्ता, अपने पोषण करनेवाली रचनाओं को ही प्रेरणा देती है । शेष रचनाओं को दबोच देना चाहती है । श्री सुरेन्द्र वर्मा ने "आठवाँ सर्ग" में साहित्यकार की प्रतिबद्धता की इस समस्या को चित्रित किया है । इसमें भी कवि कालिदास इच्छानुसार काव्य-रचना के लिए स्वतंत्र नहीं है, क्योंकि नैतिकता, राज्य, अर्थ आदि कलाकार की स्वतंत्रता के लिए बाधक हैं, जो उसे सामान्य जीवन से विमुख कर प्रकृति के निकट लाकर अन्तर्मुखी बना देते हैं ।

जब महाराज चन्द्रगुप्त के राजकवि कालिदास ने "कुमारसंभव" के आठवाँ सर्ग की रचना की तब राजसभा में उसके पाठ करने का निश्चय हुआ । इस सर्ग में शिव-पार्वती के विवाह के बाद की काम-केलि का स्वाभाविक वर्णन था । शत्रुओं के षड्यंत्र से महाकाल-मन्दिर के पुजारी स्वयं यह पाठ सुनने आये थे । उन लोगों ने आठवाँ सर्ग पर अश्लीलता का आरोपण किया ।

---

1. मोहन राकेश - आषाढ़ का एक दिन - पृ. 57

कालिदास ने इसका विरोध किया । चन्द्रगुप्त कालिदास से जनता की धर्म-भावना की रक्षा की प्रार्थना करते हैं क्योंकि सीमा को पदाक्रांत करते शत्रुओं के दमन के लिए राजा को जनता के समर्थन की आवश्यकता थी । इसलिए राजा, कालिदास पर दबाव डालते हैं कि वह शासन के अनुकूल व्यवहार करे । आर्थिक विपन्नता ही इसमें कलाकार की बड़ी समस्या है ।

शासक चन्द्रगुप्त की राय में रचनात्मक प्रतिभा अपने आप में अधूरी है, क्योंकि रचना को प्रकाश में लाने के लिए, उसके प्रचार और प्रसार के लिए, उसकी स्वीकृति और मान्यता के लिए कुछ माध्यमों की आवश्यकता होती है ।[1] कालिदास, चन्द्रगुप्त के इस शर्त को स्वीकार करने के लिए सहमत नहीं कि उमा और महादेव की सारी विलास क्रीडा को आठवाँ सर्ग से हटा दें । चन्द्रगुप्त जैसे शासक हमेशा यही चाहता है कि लेखक या साहित्यकार उनके व्यक्तित्व और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को सत्ता के सामने सौंप दें और शासन की इच्छा के मुताबिक रचना करें ।

निरंकुश शासकों द्वारा कलाकारों पर दबाव का चित्रण भीष्म साहनी ने 'हानूश' में किया है । लगातार सत्रह साल की कड़ी मेहनत के बाद चेकोस्लोवाकिया की पहली घड़ी बनाने में हानूश सफल हुआ, जो नगर पालिका की मीनार पर लगायी गयी । लेकिन इतनी बड़ी सफलता के बाद भी राजा से उन्हें निर्दयता ही प्राप्त हुई । बादशाह ने उसको अपनी आँखों से महरूम कर देने की सज़ा दी । इसलिए उसकी आँखें निकलवा लीं कि वह इस तरह की कोई दूसरी घड़ी न बना सके । इसके माध्यम से नाटककार ने निरंकुश शासक के हाथों एक निर्दोह कलाकार का दमन चित्रित किया है ।

---

1. नरेन्द्र वर्मा - आठवाँ सर्ग - प. 56

"कोणार्क" में श्री जगदीश चन्द्र माथुर ने दिखाया है कि कला-विद्वेषी शासकों के हाथों में कला और कलाकार को सिसकियाँ लेनी पडती है । बारह बरस से कोणार्क मंदिर के निर्माण में तन-मन से लगे हुए प्रमुख शिल्पी विशु और उनके अनुचर बारह सौ शिल्पियों के साथ क्रूर अमात्य चालुक्य का निर्दयतापूर्ण व्यवहार इसका स्पष्ट प्रमाण है । एक हफ्ते के अंदर मंदिर के निर्माण की पूर्ति न की जाने पर शिल्पियों के हाथ काट देने की धमकी देनेवाला अमात्य चालुक्य उस अमानवीय सत्ता का प्रतीक है जो कलाकार की अभिव्यक्ति स्वतंत्रता को अपने पैरों तले बुरी तरह रौंदना चाहती है ।

श्री शंकर शेष ने "कालजयी" में राज्य के गायकों को देश निकाला देकर, उनकी वंश परंपरा का नाश करके, कुछ वर्षों के लिए देश को संगीत विहीन करने की चाह रखनेवाले राजा कालजयी का चित्रण करके, कलाकारों पर दबाव रखनेवाले, निरंकुश शासकों पर तीखा व्यंग्य किया है । कला के उद्देश्य का परिहास करते हुए इसमें मृत्युंजय कहता है - "राजा यदि एक हज़ार वर्ष तक मना न करे तो वहीं गायन चलेगा, दरबारी गायक केवल राजा की मुस्कुराहट के लिए गाता है, अपनी आत्मा के लिए नहीं ।"[1] इसके द्वारा नाटककार ने कलाकार की प्रतिबद्धता की समस्या की ओर संकेत किया है ।

धर्म और राजनीति का गलबाहीं संबंध

मानव को जीवन मूल्यों से अवगत करके उन्हें सन्मार्ग पर अग्रसर कराना ही किसी भी धर्म का मूल लक्ष्य माना जाता है । धार्मिक पुरोधाओं का मकसद यह होना चाहिए कि वे अनुयायियों को सही मार्ग

---

1. शंकर शेष - कालजयी - पृ. 6-7

दिखाकर सत्य, न्याय और त्याग के पथ पर आगे बढ़ने की प्रेरणा देते रहें । लेकिन सबसे बड़े दौर्भाग्य की बात यह है कि आज धर्म के क्षेत्र में भी बहुत विद्रूपताएँ और विरूपतायें घर कर चुकी हैं । आम जनता का शोषण करनेवाली शक्तिशाली सत्ता की गलतनीतियों का डटकर विरोध करने की ताकत धार्मिक आचार्यों में होनी चाहिए । यह तो धार्मिक आचार्यों के लिए कभी शोभनीय नहीं है कि वे सत्ता की घृणित राजनीति के साथ गलबाहीं संबन्ध रखें । लेकिन आजकल यह संबन्ध प्रतिदिन पनपते हुए हीं हम महसूस करते हैं । श्री भीष्म साहनी ने "हानूश" में हानूश की कथा के माध्यम से समाज को अपनी इच्छा के अनुसार चलानेवाली शोषणकारी और दमनकारी सत्ता की क्रूरता का चित्रण करने के साथ-साथ धर्म को सत्ता की इस घृणित राजनीति के साथ सहकार करते हुए दिखाया है । एक मामूली कुफ़्लसाज़ हानूश को एक अनोखी घड़ी के निर्माण करने की धुन लग गयी थी । इस घड़ी के निर्माण के लिए कुछ साल तक हानूश को गिरिजाघर के पादरी से वज़ीफ़ा मिलती थी । लेकिन घड़ी के निर्माण की पूर्ति न होने के कारण गिरिजावालों ने वज़ीफ़ा बन्द कर दी । आर्थिक सहायता के लिए पादरी के पास आये हानूश को खरी-खोटी सुनाने से भी पादरी नहीं हिचकता - "घड़ी बनाना इनसान का काम नहीं । शैतान का काम है । घड़ी बनाने की कोशिश करना ही खुदा की तौहीन करना है । भगवान ने सूरज बनाया चाँद बनाया और उन्हें घड़ी बनाना मंज़ूर होता तो क्या वह घड़ी बना नहीं सकते थे ?"[1] हानूश जैसे कलाकार के मर्म को छूने की क्षमता उस पादरी में नहीं थी । लेकिन घड़ी-निर्माण में हानूश सफल निकलता है और उस अनोखी घड़ी की ख्याति चारों दिशाओं में फैलती है तो उस घड़ी को गिरिजाघर में लगाकर गिरिजाघर की रौनक बढ़ाने के लिए वह नगरपालिका के उन सौदागरों और मनसबदारों से होड़ करने लगता है जिन्होंने घड़ी-निर्माण की पूर्ति करने के लिए हानूश की आर्थिक मदद की । पादरी लोग यह भी नहीं चाहते थे कि सौदागर

---

1. भीष्म साहनी - हानूश - पृ. 42

और दस्तकार अपने सिर उठायें और बादशाह के दरबार में नुमाइन्दगी प्राप्त करें । नगरपालिका में घड़ी के लग जाने के बाद बादशाह उस महान कलाकार की दोनों आँखें निकलवाकर उसे अन्धा बना देने का जो अनोखा पुरस्कार देता है और दरबार में जो नुमाइंदगी देता है उससे बादशाह नगरपालिका की माँगें भी मंज़ूर कर लेता है और गिरिजावालों को भी खुश कर देता है । बादशाह और गिरिजावालों के बीच का संबन्ध कितना मज़बूत है यह जॉन के कथन से स्पष्ट हैं - "अगर लाट पादरी ने बादशाह सलामत से पूछा भी तो वह उसकी बात टालेंगे थोड़े ही । वह तो अपना मुँह खोलने से पहले लाट पादरी के मुँह की ओर देखते हैं ।"[1]

भीष्म साहनी ने "कबिरा खड़ा बाज़ार में" में मध्यकालीन भारतीय इतिहास का आधार लिया है । साहनीजी ने नाटक में इस कटु यथार्थ की ओर संकेत किया है कि निरंकुश सत्ता और धार्मिक पुरोधा साधारण जनता को आपस में लड़ाकर अपने को सुरक्षित करते हैं। सत्ताधारियों और धार्मिक नेताओं के चंगुल में फँसकर आपस में विरोध करनेवाली और लड़नेवाली आमजनता की शोषण-मुक्ति के लिए कबीर कटिबद्ध है । साहनी जी की राय में मज़हब के नाम पर सलतनतें बनती हैं और सलतनतों के साये में मज़हब पनपते हैं ।"[2]

श्री सुरेन्द्र वर्मा ने "आठवाँ सर्ग" में राजनीति और धर्म के दुहरे संबन्ध को दिखाया है । इसमें व्यवस्था और कवि के द्वन्द्व का चित्रण है । कवि कालिदास ने कुमारसंभव के आठवाँ सर्ग लिखते समय, अपने ही जीवन के

---

1. भीष्म साहनी - हानूश - पृ. 44
2. भीष्म साहनी - कबिरा खड़ा बाज़ार में - पृ. 25

अंतरंग अनुभवों की अभिव्यक्ति दी । कवि का सम्मान करने के लिए उज्जयिनी की राजसभा में कुछ प्रतिष्ठित लोगों के सम्मुख इसका पाठ होना आवश्यक था । इसमें कालिदास के विरोध करनेवाले लोगों ने महाकाल के मंदिर के प्रमुख पुजारी को भी उपस्थित करा दिया । इस धर्माध्यक्ष ने कुमारसंभव के अष्टम सर्ग को अत्यन्त अश्लील और धार्मिक भावनाओं को चोट पहुँचानेवाला कहा । धर्मगुरू की बात को मानकर, सम्राट चन्द्रगुप्त ने कालिदास से इस सर्ग को अपने काव्य से निकाल देने का अनुरोध किया क्योंकि जगत्पिता महादेव और जगज्जननी पार्वती के भोग-विलास का ऐसा स्वच्छन्द और नग्न चित्रण, धार्मिक गुरू के लिए सह्य नहीं था । इसलिए वह इसके रचयिता को पापी मानता है, श्रोता को पापी मानता है, ऐसे अधर्मी और अनाचारी कवि के सम्मान समारोह में भाग लेने वालों को भी पापी मानता है । श्लील-अश्लील की बात को उठाकर कवि की प्रतिभा का गला घोंटने वाले, काव्यप्रतिभा की स्वतंत्रता, कवि-प्रतिभा की स्वाभाविकता और सहजता को स्वीकार नहीं करनेवाले पुरोधाओं का प्रतिनिधित्व करनेवाला है इसमें धर्मगुरू ।

राजनीतिज्ञ और धार्मिक आचार्यों की आपसी मित्रता का परिचय श्री लक्ष्मीनारायण लाल ने "कलंकी" में दिया है । निरंकुश शासक अकुलक्षेम अपनी जनता को बरसों तक प्रश्नहीन बनाने के लिए धार्मिक आचार्य की मदद लेता है । आज कल राजनैतिक चुनाव में धार्मिक परिवेश देने की प्रथा भारत में कुछ सालों से चलती है । इसके लिए राजनीति धर्म का आश्रय लेकर खेलती है । सबसे बुरा परिणाम यह है कि इससे धर्मान्धता हर कहीं फैलती है । सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने "बकरी" में देवी के नाम पर मतदाताओं से नेताओं के वोट माँगने का तन्त्र दिखाया है ।[1]

---

1. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना - बकरी - पृ. 45

राजनीति के कुचक्र में नारी की अस्मिता

हमारे देश में आज नारी भी राजनीति के दूषित वातावरण से अपने को बचा नहीं सकती । आज के राजनैतिक नेता और शासक अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए नारी के जिस्म की भी बिक्री करते हैं । अपनी स्वार्थता के आगे वे अपनी पत्नी या बेटी की भी चिन्ता नहीं करते । ऐसे क्रूर शासकों पर श्री शंकर शेष ने 'कोमल गांधार' में व्यंग्य किया है । कर्तव्य की आड़ में पाप करना ही हमारी नियति हो गयी है" - गांधारी के जीवन की शोकांतिका के माध्यम से इस कटु सत्य की ओर नाटककार ने संकेत किया है । नारी होने के कारण ही गांधारी पर उसके पिता, भीष्म और उसका भावी पति धृतराष्ट्र भी अन्याय करते हैं । उसके अस्तित्व की पूर्ण रूप से उपेक्षा हुई है । इसमें नाटककार यह व्यक्त किया है कि वर्तमान राजनीति इतनी क्रूर है कि इसमें स्त्री की कोई अस्मिता नहीं है । उसके परिवार में भी उसके स्वाभिमान की रक्षा नहीं हो सकती । "राजारक्त से जन्मे शरीर"से ज़्यादा कुछ मूल्य गांधारी को नहीं था ।

यह नाटक रस्म-रिवाज़ों, परंपराओं के नाम पर नारी को कठपुतली बनाने की हमारी व्यवस्था का गांधारी द्वारा किया गया विरोध पाठकों के सामने रखता है । डॉ. सुनीलकुमार लवटे की राय में "गांधारी की हास्तिनापुर आगमन की यात्रा एक अर्थ से गांधारी के जीवन संघर्ष के आरंभ ही थे ।"[1] कुरुवंश में सत्यवती, अंबा और अंबालिका के आँसुओं की कहानी पहले ही थी । उत्तराधिकारी की चिन्ता के कारण भीष्म, धृतराष्ट्र को आवेवाहित

---

1. डॉ. सुनीलकुमार लवटे - नाटककार शंकर शेष - पृ. 75

नहीं रहने देना चाहता था । वह राज्य के हित को ही महत्व देता था । इसलिए राजरक्त बहनेवाले एक शरीर की ज़रूरत थी । यहाँ गांधारी के अस्तित्व को किसी ने स्वीकार नहीं किया । भीष्म, पाण्डु के भी दो विवाह करा देते हैं । राजनीति के लिए एक-एक स्त्री के जीवन का नाश ।

गांधारी के मन में विवाह-मंडप से सीधे बाहर चली जाने की इच्छा तो हुई । लेकिन वह जा नहीं सकती । यदि वह ऐसा करती तो शायद स्त्री की मुक्ति के लिए कोई नयी दिशा खुल जाती । लेकिन इतनी हिम्मत उसमें न थी । इसके माध्यम से नाटककार ने स्त्री पर होनेवाले युग-युग के अत्याचार को सहज ढंग से प्रस्तुत किया है । साथ ही "नारी जीवन के "कोमल गांधार" छाननेवाली हमारी व्यवस्था को नष्ट करने की आवश्यकता का प्रतिपादन कर विवाह जैसे भावनात्मक प्रश्नों का राजनैतिक उत्तर ढूँढने की हमारी वृत्ति का भी पर्दाफाश करता है ।"[1]

श्री जगदीश चन्द्र माथुर ने "शारदीया" में ऐसी निरीह नारी बाइजाबाई की जिन्दगी की दर्दनाक दास्तान प्रस्तुत की है जिसका पवित्र प्रेम उसके ही पिता की राजनैतिक साज़िश के कारण बुरी तरह रौंदा जाता है ।

शंकर शेष ने "कालजयी" में सत्ता-मद में पागल एक ऐसे राजा का चित्रण किया है जो नारी को भी नहीं छोड़ता । उसका विचार है कि राजा होने के कारण उसके देश की नारी पर बलात्कार करने का अधिकार भी

---

1. डा. प्रकाश जाधव - शंकर शेष का नाट्य साहित्य - पृ. 102

उसकी है । इसमें कालजयी का कहना है - "लोचना मूर्खों और वैज्ञानिकों का कौन है सुन्दरी ? मैं तुमसे बहुत आत्मीयता से पूछ रहा हूँ........... तुम मत भूलो कि मैं देश का राजा हूँ, तुम पर बलात्कार करने की मुझे पूरी सुविधा और अधिकार है और लोग जानते हैं कि मैं इस अधिकार का उपयोग बिना हिचकिचाहट के करता हूँ ।"[1]

श्री सर्वदानन्द अपने नाटक "भूमिजा" में सीता-परित्याग को परंपरा की लीक से हटकर एक नये सन्दर्भ में पेश करते हैं । "भूमिजा" की सीता उस नारी का प्रतीक है जो किसी भी कीमत पर अपने पतिदेव की मर्यादा को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए मौन आत्मोत्सर्ग करती है । सर्वदानन्द की राय पुरुष के आगे परीक्षा लेते रहने में ही स्त्री जीवन की परम सार्थकता है नारी की कोमलता को निर्दयता से पाव से कुचलकर सघन नर गौरव के शिखर पर चढता है ।[2] पुरुष वर्ग को अपनी मर्यादा प्यारी है । राजकाज देखना है । अपने वंश का मुख उज्ज्वल रखने के प्रयास में डूबे हुए पुरुषों ने नारी की व्यथा को नहीं पहचाना है । नाटककार की शिकायत भी यही है - "महाराज की प्रशंसा के कोलाहल में सीता का मौन उत्सर्ग लोग भूल जायेंगे ।"[3] अतः सर्वदानन्द की स्पष्ट धारणा तो यही है कि राजनीति की तुला पर रमणी का प्रेम कभी नहीं तुला जा सकता ।

---

1. शंकर शेष - कालजयी - पृ. 24
2. सर्वदानन्द - भूमिजा - पृ. 96
3. सर्वदानन्द - भूमिजा - पृ. 27

भीष्म साहनी के नाटक "माधवी" में एक निरीह नारी की मौन व्यथा गूँज उठती है । पुरुष सत्तात्मक समाज और वहाँ की राजनीतिक महत्वाकांक्षा ही निरीह नारी माधवी की व्यथा का कारण है । राजा ययाति, अपनी बेटी माधवी का दान करके अपनी दानवीरता को बनाया रखना चाहता है । इस महत्वाकांक्षा की ज्वाला में माधवी को अपनी ज़िन्दगी की सारी अभिलाषाएँ कुरबान करनी पड़ती है । माधवी की कथा उस नारी की कथा है जिसको राजनीतिक महत्वाकांक्षाओं से ग्रस्त पुरुषों की कर्तव्यपरायणता एवं अहं की तुष्टि में अपनी ज़िन्दगी को ही स्वाहा करना पड़ता है ।

ज़ाहिर है, आज की राजनीति के बारे में सोचते समय हमारा यही विश्वास है कि अंग्रेज़ों के शासन और आज के हमारे शासन में कोई विशेष अन्तर नहीं है, केवल शासक ही बदले हैं । शासन पद्धति एवं शासकीय नीतियों कोई फरक नहीं । स्वातंत्र्योत्तर भारत में प्रजातन्त्रीय व्यवस्था की स्थापना हुई, लेकिन सत्ताधारी वर्ग को ही इसका अधिक फायदा हुआ । स्वतंत्रता के पूर्व आदर्शों और मान्यताओं के स्थान पर आज अवसरवादिता, स्वार्थपरता, सत्ता-मोह और भ्रष्टाचार को महत्व दिया है । इसी सन्दर्भ में डॉ. चन्द्रशेखर की राय सही लगती है - "भ्रष्ट शासन, राजधानी-तंत्र, लुच्ची व्यवस्था, खोखली सिंहासन धर्मिता, बेहया शक्ति का वंशानुगत ध्रुवीकरण - यह है हमारा कुल राजनैतिक पर्यावरण ।"[1] दरअसल आज की राजनीति मनुष्य को बरबाद कर सिर्फ सत्ता हथियाने का शार्टकट है ।

---

1. डॉ. चन्द्रशेखर - लक्ष्मीनारायण लाल की रंग यात्रा - पृ. 14

चौथा अध्याय

आम जनता का शोषण

चौथा अध्याय

आम जनता का शोषण

आज राजनीति के क्षेत्र में त्याग, सत्य, अहिंसा आदि मूल्यों के लिए स्थान नहीं है । आज के राजनीतिज्ञ हिंसा, असत्य और स्वार्थ को लेकर आगे बढ़ रहे हैं । ये नेता अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए प्रांतीयता, जातीयता और सांप्रदायिकता का विष फैलाते हैं । ये सांप्रदायिक शक्तियाँ बहुत होशियारी से अपना खेल खेलती है, जिसके कारण लोगों में परस्पर सौहार्द के स्थान पर सन्देह एवं मनोमालिन्य बढा है । राजनीति के क्षेत्र में झूठ और छल का प्रयोग ही आदर्श माना जाता है ।

आज राजनीति इतनी भ्रष्ट हो गयी है कि "दल-बदल", राजनीति का सामान्य धर्म हो गया है और उसका लक्ष्य है "स्वार्थपूर्ति" । "पुराने सामंत भले ही न रह गये हो, किन्तु नेताओं के रूप में नये सामंत पैदा हो गये हैं, जो जनसेवा की आड़ में ऐयाशी करते हैं, नारे लगाये जाते हैं जनता की सेवा के, लेकिन सेवा सब लोग अपनी अपनी कर रहे हैं ।"[1]

जीवन मूल्यों के अभाव से आज की राजनीति जनता से बहुत दूर हो गई है जिसके कारण सामाजिक एवं नैतिक मूल्य भी विघटित हो रहे हैं । सभी राजनैतिक दल राजनीति को स्वार्थ लिप्सा का साधन मात्र मानने लगे । इसप्रकार वे राजनीति के माध्यम से भोली भाली जनता को अपनी स्वार्थसिद्धि की झूठी दुनिया में फँसाकर बहकाते हैं और उन्हें डराते-धमकाते हैं । ये नेता अपने स्वार्थों की पूर्ति हर कीमत पर करना चाहते हैं । इसलिए वे हमेशा आमजनता का शोषण करते रहते हैं ।

---

१. श्री लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय - द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृष्ठ-42.

स्वतंत्रता के बाद राजनीति के क्षेत्र में जो मूल्य शोषण हुआ, उसका सबसे अधिक प्रभाव तो आमजनता पर ही पड़ा है । आज के राजनीतिज्ञ स्वार्थ लाभ एवं सत्ता के मोह के कारण हमेशा आम जनता का शोषण करते हैं । वे अपने झूठे वादाओं और राजनैतिक कुचक्रों से भोली भाली आमजनता को धोखा देते हैं । सत्ता व सिंहासन की शक्ति से प्रजा का संरक्षण करना राजा का कर्तव्य है । लेकिन आज के राजा, राजा बनते ही निरंकुश हो जाते हैं और जनता के संरक्षण की बात भूलकर उनका शोषण करने लगते हैं ।

आज हमारे देश में आम आदमी केवल वोटर है । मात्र एक वोटर के रूप में ही आज उसका अस्तित्व है । इसके अलावा उसका कोई मूल्य नहीं है । इसका यथार्थ चित्रण डा. लक्ष्मी नारायण लाल ने "अब्दुल्ला दीवाना" नाटक में किया है । इसमें उन्होंने आज़ादी की नयी व्याख्या[1] की है । पुरुष और वकील के मत में गोरों से कालों का आज़ादी पाने का मतलब नये राजाओं को जन्म देना, इन्सानों की जगह वोटरों को पैदा करना, भूखे और बेकार रहकर सिर्फ़ रोज़ी रोटी की बात करनी है ।

आमजनता के शोषण के कारण

आम आदमी के स्वार्थी राजनीतिज्ञों के शोषण के शिकार बनने के कई कारण हैं । मौजूदा व्यवस्था की कुछ विसंगतियों के कारण आम जनता इन स्वार्थी लोगों के इशारे पर नाचने के लिए मजबूर हो जाती है । उनके इस शोषण का दायित्व एक सीमा तक उन्हीं के चरित्र की कुछ कमज़ोरियों पर भी है ।

---

1. डा. लक्ष्मीनारायण लाल - अब्दुल्ला दीवाना - पृ. 100

बिगडी हुई आर्थिक स्थिति

राजनीतिज्ञों के शोषण के शिकार बनने का एक प्रमुख कारण जनता की बिगडी हुई आर्थिक स्थिति है । इस अभावग्रस्तता के कारण वे राजनीतिज्ञों के शोषण से बच नहीं सकतीं । उत्तराधिकार की होड में देश के भविष्य को भूलनेवाले राजनीतिज्ञों की अंधी स्वार्थ-भावना सारे देश का कैसा सर्वनाश करती है, इसकी सही तस्वीर लक्ष्मीनारायण लाल ने "सूर्यमुख" में व्यासपुत्र की वाणी[1] द्वारा पेश की है । द्वारिका की दक्षिण दिशा से उत्तरोत्तर समुद्र के बढ़ते चले जाने के बावजूद उसे रोकने का कोई प्रयत्न न होना, नगर में रोगियों और भिखारियों की संख्या बढ जाना और नगर में अन्न के टुकडे बीनती हुई असंख्य भिखारियों की भीड़ आदि उस द्वारिका नगरी की दलित पीडित आमजनता की अभावग्रस्तता के स्पष्ट प्रमाण हैं ।

आज़ादी की लंबी अवधि के बीत जाने के बावजूद भी देश की आमजनता की बुनियादी ज़रूरतों की पूर्ति नहीं हुई है । वे कभी नहीं चाहती हैं कि उन्हें सारी सुख-सुविधाओं से भरी पूरी, ऐशोआराम की ज़िन्दगी मिले, वे तिमंजिले मकान के मालिक बनें, करोडपति बनकर सारी दुनिया की सैर करें, बल्कि वे मात्र यही चाहती हैं कि उन्हें कम से कम दिन में दो बार सूखी रोटी मिले, अपना नंगापन छिपाने के लिए एक चिथडा मिले और सिर के ऊपर एक छप्पर मिले। लेकिन इन बुनियादी ज़रूरतों से वे वंचित हैं । श्री सुशील कुमार सिंह ने "सिंहासन खाली है" में ऐसी अभिशप्त ज़िन्दगी बितानेवाली जनता से हमारा परिचय कराया है । वे अपने हालात को गुलामों से भी बदतर समझती हैं क्योंकि

---

1. लक्ष्मीनारायण लाल - सूर्यमुख - पृ. 17 और 31

"सब कुछ अपना और अपना कहने लायक कुछ भी नहीं । राशन नहीं मिलेगा, बिजली नहीं मिलेगी, इंधन नहीं मिलेगा ।"[1] दर असल सुशीलकुमार सिंह ने अपने चारों ओर के परिवेश का खुरदरा यथार्थ ही अंकित किया है ।

स्वतंत्रता के नाम पर देश की जनता को मिल रही वस्तुओं का अभाव, बिजली-पानी की कमी, महँगाई, बेरोज़गारी, काला बाज़ारी आदि का स्पष्ट चित्र[2] "आला अफ़सर" में मुद्राराक्षस ने प्रस्तुत किया है । सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने अपने नाटक "अब गरीबी हटाओ" में गरीबों की दुर्गति का अनुचित लाभ उठानेवाले लोगों की पोल खोल दी है । इसमें राजा एक गरीब औरत की गरीबी दूर करने का वादा देता है, लेकिन शर्त तो यही है, उस बेचारी को अपनी इज्ज़त राजा के हाथों बेचनी है । गरीबी हटाने के बहाने बेचारी औरतों की इज्ज़त आबरू लूटनेवाले होशियार किस्म के लोग हमारे बीच मौजूद हैं । ऐसे लोगों के सम्बन्ध में श्री सर्वेश्वर दयाल सक्सेना जी का कथन बिलकुल ठीक है - "है गरीबों की दुर्गति अपने प्यारे देश में,
हर तरफ बैठे लुटेरे, रक्षकों के वेश में ।"[3]

श्री दयाप्रकाश सिन्हा के नाटक "इतिहासचक्र" का राजा अपनी जनता को पहचानने में भी असमर्थ है और सेक्रेटरी उन्हें जनता की हुलिया[4] सुना देते हैं । उस जनता के लाखों करोडों मुख हैं, करोडों हाथ हैं, उसका पेट खाली है, खाने को रोटियाँ नहीं, पहनावे के रूप में बहुत कम कपडे हैं और उसके सिर

---

1. सुशीलकुमार सिंह - सिंहासन खाली है - पृ. 48
2. मुद्राराक्षस - आला अफ़सर - पृ. 80
3. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - अब गरीबी हटाओ - पृ. 36
4. दयाप्रकाश सिन्हा - इतिहास चक्र - पृ. 37-38

पर सिर्फ तारों भरा आसमान है । जब सेक्रेटरी कहता है कि जनता के पास बहुत कम कपडे ही है तो राजा का यह झट उत्तर — "फैशनेबिल है" - राजा की दायित्वहीनता का स्पष्ट प्रमाण है ।

मज़दूरों के पसीने से ही अमीरों की तिजोरी की ताकत बढती है । लेकिन इन मज़दूरों की नियति कभी नहीं बदलती । दयाप्रकाश सिन्हा के "इतिहासचक्र" का 'अनामी' इन मज़दूरों के प्रतीक के रूप में आता है जो अपने मालिक के लिए मेहनत करते हैं, ज़मीन तोड़ते हैं, फावडा चलाते हैं, लेकिन दवा के लिए पैसा तक उनके हाथ कभी नहीं आता ।

पशु की ज़िन्दगी से भी गयी बीती जिन्दगी बितानेवाले लोगों के दु:ख दर्द से परिचित कराने के लिए मुद्राराक्षस हमें हरिजनों की बस्ती में ले जाते हैं । धोबन की दर्दभरी आवाज़ में - इस देश के शोषित हरिजनों की व्यथा गूँज उठती है ।

धोबन

हम हज़ारों बरस से यहाँ दास हैं
जानवर से भी बदतर हमें है किया
आज भी गन्दगी आपकी ढो रहे
आपके पैर में जूतियाँ बन पडे ।
जीना हमको ज़मीं पर दूभर हुआ
आसमाँ पर महल आपके हैं खडे ।।[1]

---

1. मुद्राराक्षस - आला अफसर - पृ. 79

आज आम जनता के सामने महँगाई मुँह बाये उनको निगलने के लिए खडी हुई है । ऐसी महँगाई से बुरी तरह पीडित आम जनता की विवशता का स्वर "आला अफसर" में गूँज उठता है ।[1] लक्ष्मीकांत वर्मा के नाटक "रोशनी एक नदी है" की कुमकुम ऐसी पीडित आमजनता के प्रतीक के रूप में आती है । उसकी कथा यों मुखरित होती है - "देश में आज लोग भूखों मर रहे हैं..... अकाल है, भुखमरी है, अपमान है, बेइज्जती है, मौत है, ऐसी मौत जिसे हम न चाहते हैं, न चाह सकते हैं ।"[2]

भूख से तडपते व्यक्ति अपना पेट भरने के लिए अदना से अदना काम करने को तैयार है । बेचारी जनता की भूख का अनुचित लाभ उठानेवाले लोगों की कोई कमी नहीं । "रोशनी एक नदी है" में भूख से पीडित होकर चार रुपये के लिए कडी धूप में हवाई अड्डे पर झंडे लेकर नेता का स्वागत करने को खडे रहने के लिए मजबूर बच्चों को हम देखते हैं ।

देश की जनसंख्या का अधिक भाग भूख से तडपती अभावग्रस्त जनता है । इसका एक चित्र ज्ञानदेव अग्निहोत्री ने "शुतुरमुर्ग" में अंकित किया है । जब महारानी भूख से पीडित एक व्यक्ति को देखना चाहती है तो भाषण मंत्री का यह कथन - यदि आप कहें तो हम एक सहस्र भूख से मरते व्यक्ति एकत्र कर दें "[3] - इसका स्पष्ट प्रमाण है ।

---

1. मुद्राराक्षस - आला अफसर - पृ. 80
2. लक्ष्मीकांत वर्मा - रोशनी एक नदी है - पृ. 44
3. ज्ञानदेव अग्निहोत्री - शुतुरमुर्ग - पृ. 52

आमजनता की निरक्षरता

भारत जैसे आज़ाद देश के लिए यह बड़ी शर्मीली बात है कि स्वतंत्रता के चार-पाँच दशक बीत जाने के बाद भी यहाँ की सत्तर प्रतिशत जनता निरक्षर है । इसी निरक्षरता ने भारतीय जनमानस को कई तरह से बिगाड दिया हैं । निरक्षर जनता बहुत जल्दी अन्धविश्वास और शोषण की शिकार बन जाती हैं । वे यथार्थ से पलायन करना चाहती हैं । संघर्ष से दूर भागना ही उन्हें प्रिय है । वे चाहती हैं कि उनकी ज़िन्दगी का फैसला दूसरे लोग ले लें । शोषण के हाथों शिकार बनने के बाद भी उनकी ओर से कोई प्रतिक्रिया नहीं होती । व्यक्तिगत और निजी स्वार्थों की पूर्ति में लगे हुए लोगों के लिए ऐसी निष्क्रिय, निरक्षर और अन्धविश्वासी जनता एक वरदान है । वे इन बेचारी जनता पर अपनी मनमानी चला सकते हैं ।

निरक्षरता एवं अन्धश्रद्धा के कारण आमजनता स्वार्थी नेताओं की साजिश और षड्यन्त्र के जाल में किस तरह फँस जाती हैं, इसका प्रभावशाली चित्रण श्री सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने "बकरी" में किया है । गाँव की गरीब, अनपढ़ औरत विपती की बकरी को छीन लेते हुए तीन डाकू कर्मवीर, सत्यवीर और दुर्जनसिंह उसे विश्वास दिलाते हैं - "इस बकरी की माँ की माँ की माँ की माँ गाँधीजी के पास थी ।"[1] अनपढ़ ग्रामीणों के अन्धविश्वास के कारण वे तीनों मिलकर पूरे गाँववालों को धोखा देते हैं और उन्हें विश्वास दिलाते हैं कि उस बकरी में दैवी शक्ति है जिसे पहचानने से जनता का दुखदर्द, तकलीफ सब दूर हो जाएगा ।

---

1. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना - बकरी - पृ. 28

"बकरी" नाटक की निरक्षर जनता इस गलतफहमी में बुरी तरह फँस गयी है कि गाँव में महामारी का फैलना, सूखा पडना, आदमी और मवेशी का पटापट मरना, सिर्फ ईश्वर कोप के कारण है । एक बूँद पानी के लिए तरसनेवाली ग्रामीण जनता, नेता दुर्जनसिंह की इस बात पर आँखें मूँदकर विश्वास करती है - "पानी ज़मीन फोडकर अपने आप निकलेगा"[1] श्री लक्ष्मीनारायण लाल अपने नाटक "सूर्यमुख" में अन्धविश्वासों की जंजीरों में जकडी भोली-भाली जनता को प्रस्तुत करते हैं । कृष्ण के पुत्र और उनकी सारी नारायणी सेना अलग अलग शिविरों में बाँटकर, देश की भलाई को भूलकर उत्तराधिकार की लडाई लड रहे हैं । हिंसा, लूट और व्यभिचार में वे डूबे हुए हैं । इस बात की उन्हें तनिक भी चिन्ता नहीं है कि सारे द्वापर का सत्यानाश हो रहा है । लेकिन द्वापर की मासूम जनता का विश्वास है कि निश्चय ही यह सब महाकाल का कोप है । लक्ष्मीनारायण लाल के "एक सत्य हरिश्चन्द्र" नाटक में हमारी मुलाकात ऐसी धर्मभीरू, अनपढ हरिजन जनता से होती है जो अपने आपको गुलाम मानती है । यही नहीं, उनके मन में यह विश्वास भी रूढमूल हो चुका है कि गाँव के देवधर जैसे सवर्ण एवं ज़मीन्दार आदमियों को भगवान ने बनाया ।[2]

जनता अपनी अज्ञता के कारण शासकों के मीठे एवं झूठे वादाओं पर यकीन करती है । शासक लोग अक्सर सीधी-सादी जनता को भविष्य की सुखसुविधाओं का झूठा आश्वासन दिलाकर यथार्थ की दुनिया से कोसों दूर हाँककर अयथार्थ की दुनिया में धकेल देते हैं । अपनी सत्ता को सुरक्षित बनाये रखने के लिए स्वार्थलोलुप शासक किस प्रकार मासूम जनता को प्रश्नहीन बनाते हैं, इसका

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - बकरी - पृ. 28
2. लक्ष्मीनारायण लाल - एक सत्य हरिश्चन्द्र - पृ. 17

सही परिचय लक्ष्मीनारायण लाल ने "कलंकी" नाटक में दिया है । निरंकुश शासक अकुलक्षेम ने जनता को विश्वास दिलाया है कि "कलंकी अवतार" होनेवाला है जिससे जनता का सारा दुःख समाप्त हो जाएगा । उस नगर की अनपढ़ जनता परिवर्तन से भी भयभीत है; सोचना-विचारना उनके वश की बात नहीं । "कलंकी अवतार" की प्रतीक्षा में वे कई सपने संजोने लगती हैं, जैसे "कलंकी अवतार के बाद सारा देश धन-धान्य से भर जायेगा, रोग-अन्धकार सब मिट जायेगा, धरती पर सत्युग आयेगा....." [1] एक ग्रामीण वृद्ध का कथन है - "कलंकी जब यहाँ आये, तो उसके घोडे का सेवक मैं बनूँगा। घोडा बहुत दूर चलकर आया होगा; वह कितना थका होगा । उसके पैर दबाऊँगा, नहलाऊँगा, अपने इस अंगोछे से पोंछूँगा । हाँ-हाँ पोंछूँगा, कुछ पूछूँगा नहीं, वृद्ध होकर भला मैं क्या इतना भी नहीं जानता ! उसके संग भोजन करूँगा, उसके पास ही सोऊँगा और उससे कुछ बातें करूँगा ।" [2] बेचारी जनता इस साज़िश से कभी अवगत नहीं होती कि शासक द्वारा कलंकी अवतार की घोषणा जनता को निष्क्रिय बनाने की एक कूटनीति मात्र थी ।

कायर आम जनता

जनता की कायरता शोषकों के लिए वरदान सिद्ध होती है । निरंकुश शासकों का जन्म इसलिए नहीं होता कि वे शक्तिशाली हैं, बल्कि इसलिए होता है कि जनता शक्तिहीन हैं और कायर हैं । श्री लक्ष्मीनारायण लाल ने इस सत्य की ओर संकेत किया है - "निरंकुश शासक अपने आने से पहले सबको बाँट देता, सबको अकेला कर देता है, वह अपनी शक्ति से नहीं, हमारी दुर्बलता से आता है ।" [3] सत्ता में रहनेवाले, जनता की कायरता का खूब लाभ

---

1. लक्ष्मीनारायण लाल - कलंकी - पृ. 9 - 10
2. लक्ष्मीनारायण लाल - कलंकी - पृ. 24 - 25
3. लक्ष्मीनारायण लाल - कलंकी - पृ. 25

उठाते हैं । अन्याय और अत्याचार को आँखों के सामने देखते हुए भी अपनी कायरता के कारण उसके विरुद्ध आवाज़ नहीं उठाती । शोषण के हाथों में अपने आपको सौंपनेवाले कुछ शिल्पियों की गुलामी मानसिकता का ब्यौरा जगदीशचन्द्र माथुर ने "कोणार्क" में किया है । बारह बरस से बारह सौ शिल्पियों की मदद से सूर्यमन्दिर कोणार्क के निर्माण में तन-मन से लगे हुए प्रधान शिल्पि विशु इस अन्याय से बिलकुल अवगत है कि इन शिल्पियों और मज़दूरों के साथ महामात्य चालुक्य द्वारा अन्याय हो रहा है, कुछ महीनों से उन्हें वेतन नहीं मिल रहा है, उनकी ज़मीन के टुकडे छीन लिए गए हैं शिल्पियों एवं मज़दूरों की औरतों की बेइज्ज़ती हो रही है और उन्हें बेघरबार बना दिया गया है । यहाँ तक कि अमात्य की ओर से एक हफ्ते के अन्दर मन्दिर के निर्माण की पूर्ति न हो जाय तो शिल्पियों के हाथ कटवा दिये जाने की धमकी भी दी जाती है । प्रधान शिल्पि विशु इस जोरजुल्म के विरुद्ध चुप्पी ही साधता है क्योंकि उनकी राय में "राजनीति के मामलों में दखल देना शिल्पि के लिए शोभनीय नहीं । इस अत्याचार के विरुद्ध आवाज़ उठाने की ताकत शिल्पियों में भी नहीं । शोषितों की चुप्पी शोषकों के लिए खाद बनती है । लक्ष्मी-नारायण लाल की राय में ऐसी जनता गूँगी है ।[1] "नरसिंह कथा" नाटक का निरंकुश शासक अपने देश "अंध" में अपनी मनमानी इसलिए ज़ारी कर सके कि वहाँ की जनता कायर थी । जनमानस के हद दर्जे की सहनशीलता उसके लिए वरदान सिद्ध हुई । उस गणतन्त्र की जनता यहाँ तक विश्वास कर बैठी है कि राजा और ईश्वर अलग अलग नहीं, दोनों एक है । राजा के अतिरिक्त और कोई शक्ति नहीं, ऐसी सत्ता पर विश्वास करना भी ज़रा-सा राज्यद्रोह है । ऐसी जनता को अपनी मोहनिद्रा से जगाने के लिए प्रह्लाद उन कमज़ोरियों की ओर संकेत देते हैं - "विषमता, अकेलापन, असमानता के अन्धकार में

---

1. लक्ष्मीनारायण लाल - नरसिंह कथा - पृ. 68 - 69

हिरण्यकशिपु यहाँ का निरंकुश राजा बना है । वह अपनी शक्ति से नहीं हमारी कमज़ोरियों से बना । आर्य, अनार्य, जाति-धर्म की आपसी फूट, नीच-ऊँच, सवर्ण-शूद्र के भेद में से आया है यह तानाशाह ।"[1]

अशिक्षित एवं गरीब जनता राजनैतिक नेताओं के अत्याचारों को समझकर भी उसके विरुद्ध आवाज़ नहीं उठा सकती; वे प्रश्नहीन रह जाती हैं । जनता का कोई भी तर्क वे पसन्द नहीं करते । जनता इन शासकों से इतनी डरती है कि उनके "घूरकर देखने" मात्र से प्रश्नकर्ता गायब हो जाता है ।[2] आम जनता के इस "डर" पर ही नेता अपनी नींव डालते हैं ।

अपनी आँखों के सामने अन्याय की दुनिया को देखने के बाद भी अनदेखा करने की आदत मात्र अनपढ़ और निरक्षर जनता में ही नहीं, बल्कि पढ़े-लिखे, ऊँचे पद-ओहदों पर बैठी हुई बड़ी-बड़ी हस्तियों में भी है । अत्याचा के सामने वे कैसे चुप्पी साधते हैं, इसका स्पष्ट चित्रण शंकर शेष ने "एक और द्रोणाचार्य" में किया है । परीक्षा हॉल में छुरा सामने रखकर, कॉलिज के प्रेसिडेंट के बेटे राजकुमार को नकल करते हुए देखने के बाद भी प्रो. मिश्रा अनदेखा करते हैं । पूरी उम्र दूसरों से डरते रहने का जो अभिशाप आज का पढ़ा-लिखा, नौकरी-पेशा आदमी झेलता है, उसकी पीडा प्रो. अरविन्द की वाणी में गूँजती है - "अब किस-किस से डरूँ, लीला ? कॉलिज को दुकान की तरह चलानेवाले उस प्रेसिडेंट से ? (विराम) अंगूठा-छाप कमेटी-मेम्बरों से ? चुगली खानेवाले अपने सहयोगियों से ? (विराम) उस लिजलिजे बेहूदे प्रिंसिपल से ? विद्यार्थियों से ?"[3]

---

1. लक्ष्मीनारायण लाल - नरसिंह कथा - पृ. 27
2. लक्ष्मीनारायण लाल - कलंकी - पृ. 8
3. शंकर शेष - एक और द्रोणाचार्य - पृ. 20

प्रोफेसर अरविन्द के सहयोगी, कॉलिज के प्रेसिडेंट को नाराज़ कर देना नहीं चाहते। हर एक डरता है कि बढा हुआ डी.ए. अब खटाई में पड जायेगा । यही नहीं, अन्याय के विरुद्ध आवाज़ उठाई विमलेन्दु की जिन्दगी का दर्दनाक परिणाम भी उनके सामने था । उसका दोष मात्र यही था कि उसने एक बडे आदमी के लडके को नकल करते पकडा था । बडे आदमी के गुण्डों ने चौराहे पर जब उसकी जान ले ली, तो सब, बुजदिलों की तरह घर में बैठे रहे । एक आदमी भी गवाही देने के लिए नहीं गया ।

कॉलिज की छात्रा अनुराधा भी अत्याचार की शिकार बन गयी । राजकुमार ने उसके साथ बलात्कार की कोशिश की, वह बेचारी लडकी आखिर खुदखुशी कर लेती है । अनुराधा के बूढे माँ-बाप में शक्तिशाली सत्ता से लडने की ताकत नहीं है । वे दोनों अपनी बेटी के बलात्कार के केस को आगे बढाना नहीं चाहते, केस को रफ़ा-दफ़ाकर मिटा देना चाहते हैं । माता-पिताओं का यह डर स्वाभाविक है । कोई भी यह नहीं चाहेगा कि अपनी जवान बेटी के "रेप" की खबरें मसालेदार ढंग से अखबारों में छापकर आयें । जोरजुल्म के विरुद्ध चुप्पी साधने का एक प्रमुख कारण यह भी है । यों शंकर शेष ने यथार्थ से पलायन करनेवाले तथा दुम दबाकर बैठनेवाले लोगों की कायरता पर करारी चोट की है ।

श्री दुष्यन्त कुमार की राय में आमजनता शासकों की आइतें - न्याय हो या अन्याय, चुपचाप वहन करने के लिए अभिशप्त हैं । आम आदमी की व्यथा सर्वहत की वाणी में मुखरित है -

"सोच नहीं सकता हूँ
और सोचना मेरा काम नहीं है ।
उससे मुझे लाभ क्या.....
मुझको तो आदेश चाहिए

मैं तो शासक नहीं
प्रजा हूँ.....
मात्र भृत्य हूँ ।"[1]

अतः मौजूदा व्यवस्था में आम आदमी की हैसियत उन गुड़ियों की जैसी है जिनमें चाबी भरी जाती है तो हँसती हैं, खेलती हैं, तालियाँ बजाती हैं और जब चाबी खतम हो जाती है तो नीचे ढह पड़ती हैं । "अंधा युग" नाटक के दोनों बूढ़े प्रहरियों की नियति भी सर्वहत की जैसी है । अंधे राजा की आज्ञा का वहन करने के सिवा उनका अपना कोई निर्णय नहीं । एक विकृत शासन तन्त्र के नीचे दबनेवाले इन बूढ़े प्रहरियों के संबन्ध में श्री सुरेश गौतम की राय बिलकुल सही लगती है - "शासन तन्त्र के लौह अस्थि-पंजर में उनकी स्वतंत्रता, कोमल भावनाएँ, उनका उद्देश्य - सब कुछ समाप्त हो गया है और उनका जीवन भी शासनतन्त्र का ही एक अंग बनकर रह गया है ।"[2]

श्री गिरिराज किशोर ने "प्रजा ही रहने दो" नाटक में उस प्रजा की कुण्ठा एवं दिशाहीनता का भटकाव दर्शाया है, जो स्वार्थलोलुप शासकों के छल-बल से सताई जा रही है । ये पीड़ित जनता इतनी डरी हुई है कि कभी कभी वे अपना बोल भी भूल जाती हैं । डर के मारे जब जनता

---

1. दुष्यन्त कुमार - एक कण्ठ विष पाई - पृ. 109
2. सुरेश गौतम - अन्धा युग: एक सृजनात्मक उपलब्धि - पृ. 47

प्रश्नहीन और प्रतिक्रियाहीन बन जाती है तो शक्तिशाली सत्ता जैसे चाहे वैसे उनसे काम ले सकती है और काम के बाद उन्हें नष्टकर सकती है ताकि उस कर्म का कोई निशान भी न रह जाता ।

श्री लक्ष्मीनारायण लाल ने "रक्तकमल" में जनता की मोहनिद्रा को देश की समस्याओं का एक मूल कारण बताया है । पूरे देश का भ्रमण करने के बाद नवयुवक कमल यह सत्य समझ लेता है कि देश की जनता चारों ओर के घनघोर असत्य के प्रति कोई विरोध नहीं करती । युगों की गरीबी, फूट और पराजय ने उनके भीतर के प्रकाश को बाँध लिया है । चारों ओर अन्याय और अत्याचार फैलने पर भी उसका विरोध न करके अपने काम में लीन रहनेवाले विश्व जैसे शिल्पियों से धर्मपद का कथन है - "यह भी तो उचित नहीं है कि जब चारों ओर अत्याचार और अकाल की लपटें बढ रही हैं, शिल्पि एक शीतल एवं सुरक्षित कोने में यौवन और विलास की मूर्तियाँ ही बनाते रहे ।"[1] कला के जनकल्याणका पक्ष को महत्व देनेवाले नाटककार माथुर, कला को कला के लिए नहीं मानते; लेकिन कला जीवन के लिए मानते हैं ।

आम जनता में आत्मसुख की आसक्ति

आम जनता में आत्मसुख की जो आसक्ति है, वही उनके शोषण का एक कारण बन जाता है । जो व्यक्ति आत्मसुख की अन्धी दौड में भाग लेता है, वह किसी भी उलझन में अपने आपको न फँसने देगा । ऐसे चालाक आदमी जानते हैं कि अत्याचार और अत्याचारियों का डटकर विरोध करना खुद अपने ऊपर खतरा मोल लेना है । वे यह भी जानते हैं, शोषकों का गुणगान करने से तथा चापलूसी करने से ही अपनी तरक्की संभव है । मानवमन की इसी कमज़ोरी को श्री जगदीशचन्द्र माथुर ने "पहला राजा" में बेनकाब किया है ।

---

1. जगदीशचन्द्र माथुर - कोणार्क - पृ. 34

आर्य एवं अनार्यों के बीच के समन्वय का बडा संकल्प लेकर ब्रह्मावर्त में पधारनेवाले पृथु, पहला राजा के पद के सामने अपने सारे कर्तव्यों को भूल जाते हैं । महत्वाकांक्षी भावना से ग्रस्त पृथु अपने दोस्त कवश को धोखा देते हैं । गर्ग, अत्रि, शुक्राचार्य जैसे स्वार्थलोलुप मुनियों के इशारे पर नाचने के लिए मज़बूर हो जाते हैं । रक्त की शुद्धता की दुहाई देनेवाले मुनियों की कूटनीतिज्ञता के विरुद्ध आवाज़ उठाने की ताकत उनमें अवश्य थी । फिर भी वे इसलिए ऐसा नहीं करते कि "पहला राजा" का पद वे गँवा देना नहीं चाहते ।

श्री शंकर शेष ने "एक और द्रोणाचार्य" में मानव मूल्यों के लिए लडने के बदले व्यक्तिगत सुरक्षा के लिए अपने आदर्शों को बेचनेवाले अरविंद जैसे अध्यापक को प्रस्तुत किया है । प्रो. अरविंद अपने पारिवारिक दायित्वों और आर्थिक तंगी के कारण अपनी पत्नी लीला की प्रेरणा से अपने आदर्शों को छोडने के लिए मज़बूर हो जाता है और भ्रष्ट सत्ता के विसंगतिपूर्ण कार्यों से समझौता कर लेता है । शंकर शेष की राय में प्रो. अरविंद एक और द्रोणाचार्य है जो अपनी पत्नी कृपि और पुत्र अश्वत्थामा के सुख के लिए व्यवस्था से समझौता करके सूर्यवंश का राजगुरु बन गया था ।

श्री ज्ञानदेव अग्निहोत्री ने "शुतुरमुर्ग" नाटक में अत्याचारी शासक का विरोध करनेवाले "विरोधीलाल को, विकास मंत्री के पद मिलते ही शासक की जय बोलनेवाले "सुबोधीलाल" में परिवर्तित करके जनता के आत्मसुख की आसक्ति की ओर संकेत किया है । विकासमंत्री सुबोधीलाल स्वयं स्वर्ण की शुतुरप्रतिमा के निर्माण तथा उस के ऊपर स्वर्ण-छत्र की स्थापना में लग जाते हैं । जब मामूलीराम दो जून के भोजन की व्यवस्था की माँग

करता है तो भीड़ को शांत रखने और शुतुरमुर्ग के बन जाने तक की प्रतीक्षा की बात कही जाती है ।

स्वार्थी जनता सिर्फ अपनी भलाई सोचती है, दूसरों की चिन्ता कभी नहीं करती । आत्मसुख का दूसरा रूप है स्वार्थता । श्री दयाप्रकाश सिन्हा ने "इतिहास चक्र" में आँख और कान बन्द करके, भेड़ की तरह नारे लगाकर, कभी इस झंडे के पीछे और कभी उस झंडे के पीछे भागने-फिरनेवाली, शातिकों का अन्धानुकरण करनेवाली स्वार्थी प्रजा का चित्रण किया है । इसमें कुबेर के रूप में व्यवसायी वर्ग न्याय और नीति को खरीदकर मनमाना शोषण कर रहे हैं । सार्वजनिक कार्यालयों में काम करनेवाला मध्यवर्ग भी अपने ऐश्वर्य के साधन जुटाने के लिए लालफीताशाही की आड़ में घूसखोरी और भ्रष्टाचार से समाज में विषमताओं को बढ़ाते रहते हैं । "आला अफसर" में मुद्राराक्षस ने उन सुविधाभोगी आम जनता की असलियत को तलाशने और समझने का प्रयास किया है जो रुपये और मिठाई से भरी थाली अफसरों को भेंट करती हैं और उनका जयगान करती हैं ।

स्वार्थलाभ के लिए शोषक शासक की चापलूसी करनेवाले हानुश की तस्वीर श्री भीष्म साहनी ने "हानुश" नाटक में खींची है । महान कलाकार हानुश लगातार सत्रह साल की कठिन मेहनत के बाद चेकोस्लोवाक्या की पहली अनोखी घड़ी बनाने में कामयाब हुआ । इस कलाकार की दुर्दमनीय तितृच्छा ही उस घड़ी के रूप में प्रकट हुई । लेकिन उसके मन में डर था कि घड़ी को देखते ही बादशाह रुष्ट हो जाएगा, क्योंकि बादशाह की अनुमति बिना लिए ही वह घड़ी-निर्माण में लगा हुआ था । बादशाह को तुष्ट

करने के लिए उसकी झूठी प्रशंसा करना ही वह बेहतर समझता है - "हुज़ूर, यह घड़ी मैं ने बनायी है, महाराज के राज्य की शान बढ़ाने के लिए, अपने महाराज की खुशी के लिए, महाराज के कदमों पर अपनी नाचीज़ ईज़ाद भेंट करने के लिए, महाराज की इस राजधानी की रौनक बढ़ाने के लिए ."[1] यहाँ एक महान कलाकार ने सत्ता के सामने अपने व्यक्तित्व को ही गिरवी में रखा था ।

"पहला राजा" नाटक में श्री जगदीश चन्द्र माथुर ने जनता की इस चापलूसी वृत्ति का परिचय दिया है । पृथु के पहला राजा बनने के तुरन्त बाद, ब्रह्मावर्त में उनके प्रकट होते ही उनकी स्तुति गानेवाले सूत और मागध, स्वातंत्र्योत्तर भारत में जन्मे चापलूस एवं खुशामदी जनवर्ग के प्रतीक हैं । यह जानते हुए भी कि शासक ने जनता के लिए रत्ती पर भी काम नहीं किया, ये प्रचारक, शासकों की महिमा को गगनव्यापी घोषित करते ही रहेंगे, क्योंकि उन्हें पूरा विश्वास है कि उनकी ऐसी झूठी प्रशंसा से उनका भविष्य सुनहला हो जायेगा । जैसे सूत और मागध अनायास ही अनूप प्रदेश के अधिपति नियुक्त किये जाते हैं और वे बेफिक्र जिन्दगी बिताते हैं । इसके बारे में श्री गोविन्द चातक का विचार बिलकुल सही लगता है — "सूत-मागध के चित्रण में स्वतंत्रता के बाद हमारे देश में नव-निर्मित चापलूसों के वर्ग की सुन्दर व्यंजना हुई है ।"[2]

युद्ध की विभीषिका से संत्रस्त आम जनता

आम जनता के शोषण का एक और मुख्य कारण है युद्ध की विभीषिका । युद्ध एक बर्बर कृत्य है । युद्ध के समय मनुष्य अपनी मनुष्यता

---

1. भीष्म साहनी - हानूश - पृ. 75
2. गोविन्द चातक - नाटककार जगदीशचन्द्र माथुर - पृ. 6।

को दूर रखकर दानवता की सीमा-रेखाओं का परिस्पर्श करने लगता है । पूर्वयुग में धन, नारी और भूमि के प्रति ही युद्ध होते रहते थे । लेकिन आज स्थिति बदल गयी है । आज इन सबों के ऊपर जो प्रमुख तत्व युद्ध का कारण बनकर उपस्थित हुआ है, वह है राजनीति । श्री दिनकर की राय में "युद्ध करानेवाले ऐसे राजनीतिज्ञ होते हैं जिनका हृदय उतना ही मलिन होता है, जितने श्वेत सिर के बाल होते हैं । वे देश के किशोरों का वध करवाकर आश्वस्त होते हैं । वे सोचते हैं कि नवयुवकों का रक्त बहा, कोई बात नहीं, देश की लज्जा तो बच गई ।"[1] इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि युद्ध के मूल में किसी व्यक्ति या गुट का स्वार्थ ही काम करता है । जो भी हो, जितनी भी लड़ाइयाँ आपस में लड़ी गई हैं, उनके सारे घाव आमजनता के शरीर पर ही लगे हैं ।

श्री लक्ष्मीनारायण लाल ने "सूर्यमुख" में युद्ध की विभीषिका को आमजनता के शोषण के एक मुख्य कारण के रूप में चित्रित किया है । युद्धोत्तर कालीन द्वारिका में कृष्ण की मृत्यु के पश्चात् उनके पुत्र तथा अन्य यदुवंशी व्यक्तिगत स्वार्थों व सत्ता-प्राप्ति के संघर्ष में मग्न हैं । दूसरी ओर समुद्र, काल की भाँति धीरे-धीरे खेतों तथा नगर के अन्य भागों को डुबोता हुआ दुखी प्रजा का विनाश कर रहा है । युद्ध का बुरा फल तो गरीब एवं शोषित आम जनता पर ही पड़ता है ।

राजकीय कर एवं युद्ध की विभीषिका दोनों जनता के लिए उत्पीड़न हैं । श्री सुशीलकुमार सिंह जनता की इस पीड़ा से हमदर्दी रखते हैं ।

---

1. रामधारी सिंह दिनकर - कुरुक्षेत्र - पृ. ।

इसकी अभिव्यक्ति "सिंहासन खाली है" में हुई है । नाटककार के मन में इस बात से सख्त नफरत है कि अपने विश्वास और श्रद्धा से राजा को प्रभुता देनेवाली प्रजा को राजा ने धोखा दिया, सिंहासन के अहं ने हर शासक को सत्य, न्याय और अहिंसा की मनमानी व्याख्या की छूट दे दी, राज्य विस्तार, राज्य रक्षण और राज्य स्थापना के लिए होनेवाले युद्धों की आड़ में प्रजा का शोषण और अत्याचार होता रहा, सत्ता-प्राप्ति के लिए रक्तपात और हत्यायें बढ़ती गई । नाटककार का सारा आक्रोश महिला की वाणी में गूँज उठता है - "लगातार राजकीय कर देते-देते हमारे पास कुछ भी नहीं बचा । राज्य की स्थापना के लिए युद्ध, राज्य की रक्षा के लिए युद्ध, राज्य के विस्तार के लिए युद्ध और हर युद्ध के खर्चे का भार हम पर ।"[1]

आम जनता को ही युद्ध के दुष्परिणामों को सबसे अधिक भोगना पड़ता है - इस कटु सत्य की ओर श्री दुष्यन्तकुमार ने "एक कंठ विष पाई" में संकेत किया है । इसमें नाटककार ने सर्वहत के द्वारा शासनरूपी चक्की में पिसती आमजनता की कराह और उनकी आहत जिन्दगी को साकार किया है । युद्ध की सारी यातनायें सर्वहत ही अधिक झेलता है । युद्ध मनोवृत्ति के पोषक, देवलोक के नेताओं पर नाटककार ने कितनी करारी चोट की है । -

"कौन कहता है -
यहाँ कुछ भी नहीं है शेष
यहाँ शेष ही तो है सबकुछ.....
देखो सारे नगर में ताज़ा
जमा हुआ रक्त है

---

1. सुशीलकुमार सिंह - सिंहासन खाली है - पृ. 28

और सडी हुई लाशें हैं
मुर्दा हुई हड्डियाँ हैं
क्षत-विक्षत तन हैं
और उन पर भिन्नाते हुए
झीलों और गिद्दों के झुंड
और मक्खियाँ हैं "[1] -

इसमें "सर्वहत" राज्यलिप्सा तथा युद्ध मनोवृत्ति के मारे हुए एक ऐसे व्यक्ति के रूप में चित्रित किया गया है जो आधुनिक प्रजा का प्रतीक बन जाता है ।"[2] राजनैतिक नेताओं के आपसी वैयक्तिक विरोध ही युद्ध के कारण बन जाते हैं । लेकिन इसका दुष्परिणाम आमजनता को ही भोगना पडता है । दक्ष की बेटी से शादी करके शिव ने उसके खानदान पर लांछन लगा दिया । इस विरोध के कारण उनके बीच युद्ध होता है । लेकिन उस युद्ध में निरीह, बेकसूर सर्वहत जैसे आम आदमी का व्यक्तित्व ही रौंदा जाता है -

"अरे..... प्रजा हम थे
हमने उफ़ तलक नहीं की
शासन के गलत-सलत झोंकों के आगे भी
फसलों-से विनयी हम बिछे रहे निर्विवाद
हमारे व्यक्तित्व के लहलहाते हुए
खेतों से होकर -
दक्ष ने बहुत सी पगडंडियाँ बनाई
कर दी सब फसलें बरबाद

---

1. दुष्यन्त कुमार - एक कंठ विष पाई - पृ. 45
2. नया प्रतीक - मई 1976

पर हम नहीं बोले..... बिछे रहे
हमने पथ दिया सबको
क्योंकि हम प्रजा थे.....'[1]

शासकों का विचार है कि वे प्रजा की रक्षा केलिए ही युद्ध करते हैं । लेकिन युद्ध से जनता और भी दुःखी एवं पीडित हो जाती हैं । ब्रह्मा की राय में प्रजा का रक्त बहाकर, युद्ध के द्वारा प्रजा की रक्षा संभव नहीं । युद्ध से सारा सौन्दर्य रुधिरमय हो जाता है । गायन से गुंजित नगर चीत्कारों से भर देता है । ब्रह्मा प्रश्न करते हैं कि जनता के विवेक को वध की बलिवेदी पर धर देना - क्या यह भी शासकों के कर्तव्यों में अंकित है ?'[2] दुष्यन्त कुमार ब्रह्मा के इस प्रश्न के ज़रिए युद्धमनोवृत्ति के पोषक शासकों को यह सोचने के लिए मज़बूर कर देते हैं कि क्या युद्ध अवश्यंभावी है ?

युद्ध कभी भी समस्याओं का समाधान नहीं है । शासकों की चारित्रिक निर्बलता के कारण ही युद्ध होता रहता है और जितने युद्ध लडे गये हैं उनसे हमारी संस्कृति ही ह्रासोन्मुख हो गयी है । जैसे कि दुष्यंत कुमार ने ब्रह्मा की वाणी द्वारा सूचित किया है कि हर शासक का, युद्ध को समस्याओं का समाधान समझना, केवल भ्रम है -

'युद्ध
अधिक से अधिक विषम परिस्थितियों में
समाधान का संभव कारण बन सकता है,
यही नियम है ।

---

1. दुष्यंत कुमार - एक कंठ विष पाई - पृ. 110-111
2. दुष्यंत कुमार - एक कंठ विष पाई - पृ. 96

- लेकिन कोई शासक मन में
स्वयं युद्ध को,
किसी समस्या का किंचित् भी
समाधान समझे तो भ्रम है ।"[1]

श्री धर्मवीर भारती ने "अन्धा युग" में अंधे युग की युद्धोत्तर पृष्ठभूमि को आधार बनाया है । इसमें पौराणिक आख्यान के माध्यम से, आधुनिक युग में युद्ध के द्वारा जो ह्रास एवं विघटन हुआ, इसका यथार्थ अंकन किया है । अनास्था, संत्रास, कुंठा, विसंगति आदि आज के जीवन की बहुत चिन्त्य स्थितियाँ है जिनका मूल कारण तो युद्ध ही है । "कुंठा, निराशा, रक्तपात, प्रतिशोध, विकृति, कुरूप, अन्धापन इनसे हिचकिचाना क्या इन्हीं में तो सत्य के दुर्लभ कण छिपे हुए हैं तो इनमें क्यों न निडर धसूं ।"[2] द्वितीय महायुद्ध की विभीषिकायें मानव-नियति पर गंभीर चिन्तन चाहती हैं और "अन्धा युग" नाटक का प्रतिपाद्य भी यही है । राज शक्तियों की लोलुपता जनता को पीडित करती हैं और नकली चेहरों की महत्ता निरन्तर बढती जाती है । अन्धापन कई रूप में दिखलाई देता है - भय का अन्धापन, ममता का अंधापन, प्रतिशोध, मोह, मर्यादा और अधिकारों का अंधापन । दो प्रहरियों की आपसी बातचीत, बूढे अन्धे धृतराष्ट्र की अन्धी संस्कृति का बयान करती हुई, प्रजा की पीडित दशा का अहसास कराती है । वस्तुतः ये प्रहरी प्रजा के प्रतीक हैं, जो जीवन के अर्थहीन सूने गलियारे में थक चुके हैं ।

महाभारत के युद्ध ने व्यक्ति की सामाजिक और नैतिक मान्यताओं को समूल रूप से नष्ट कर दिया, प्रत्येक योद्धा ने मर्यादा और

---

1. दुष्यंत कुमार - एक कंठ विष पाई - पृ. 100 - 101
2. धर्मवीर भारती - अंधा युग - पृ. 3

नियमों का उल्लंघन कर अपना स्वार्थ सिद्ध किया और स्वयं प्रभु का चरित्र व आचरण भी इस बर्बर अमानवीय युद्ध में एक प्रश्न बनकर रह गया । मूल्यों के विघटन के कारण इस अंधे युग में तिथियाँ भी विकृत हैं -

"युद्धोपरान्त
यह अन्धा युग अवतरित हुआ
जिसमें तिथियाँ, मनोवृत्तियाँ, आत्माएँ सब विकृत हैं ।"[1]

युद्ध में किसी की भी विजय नहीं होती क्योंकि इससे दोनों पक्षों को बहुत खोना पडता है । "आज का सिंहासन अंधों से ही शोभित है । इनके विवेक ही नष्ट हो गये हैं । अन्धकार का अन्धापन जीत गया है । जो सुन्दर, शुभ तथा कोमलतम था, सब नष्ट हो गया और द्वापर युग बीत गया ।"[2]

इसमें नाटककार ने "अश्वत्थामा का अर्धसत्य" के पश्चात् कौरव नगरी की स्तब्ध, करुण और अस्तव्यस्त प्रजा का सजीव चित्र खींचा है । इसमें सत्य के पक्ष में लडने के लिए युयुत्सु अपना परिवार, राज्य और माता-पिता तक को छोडकर चला जाता है, पर युद्ध के पश्चात् वह "त्रिशंकु" की करुण स्थिति को प्राप्त करता है । पांडव अपने विजय-गर्व में उसकी उपेक्षा करते हैं और कौरव नगरवासी, माता-पिता तथा कर्मचारी ठुकराते हैं । उसके शब्द जीवन में सत्य और आस्था के मूल्य पर प्रश्न लगाते हैं और धुरीहीन-सा उसका जीवन पश्चात्ताप से भर उठता है - "अन्तिम परिणति में, दोनों जर्जर करते हैं, पक्ष चाहे सत्य का हो अथवा असत्य का, मुझको क्या मिला विदुर, मुझको

---

1. धर्मवीर भारती - अन्धा युग - पृ. 10
2. धर्मवीर भारती - अंधा युग - पृ. 11

क्या मिला ?"[1] इसमें अश्वत्थामा और अर्जुन का, ब्रह्मास्त्रों का जो युद्ध है, उसमें सामयिक युग के "अणु-भय" की ओर संकेत है । प्रतिशोध की अग्नि में झुलसता अश्वत्थामा उतरा के गर्भ पर ब्रह्मास्त्र छोडता है, पर कृष्ण उसे अपनी शक्ति से बचा लेते हैं । महाभारतोत्तर परिणामों के माध्यम से युद्धों के परिणामों, विजय के खोखलेपन और युद्ध की विषैली अग्नि में झुलसी विकृत मानवता का हृदयद्रावक चित्र है -

"सब विजयी थे, लेकिन सब थे विश्वास-ध्वस्त
थे सूत्रधार खुद कृष्ण किन्तु थे शापग्रस्त ."[2]

दो महायुद्धों की यातना से पीडित होने पर भी "अणुशस्त्रों की खोज में संलग्न वर्तमान मनुष्य को भविष्य के क्रूर विनाश की ओर संकेत कर चेतावनी भी देता है -

"यदि यह लक्ष्य सिद्ध हुआ ओ नरपशु !
तो आगे आनेवाली सदियों तक
पृथ्वी पर रसमय वनस्पति नहीं होगी
शिशु होंगे विकलांग और कुण्ठाग्रस्त
सारी मनुष्य जाति बौनी हो जायेगी ."[3]

श्री गिरिराज किशोर "प्रजा ही रहने दो" में युद्ध की यातनाएँ झेलनेवाली आम जनता की रुग्ण-मानसिकता को भी उभार देते हैं । सुयोधन सारी समस्याओं का समाधान युद्ध ही मान बैठे हैं । गांधारी भी युद्ध रोकना नहीं चाहती । देश के नागरिक को भी इस बात का अहसास होने

---

1. धर्मवीर भारती - अंधा युग - पृ. 57
2. धर्मवीर भारती - अंधा युग - पृ. 103

लगता है कि "अन्धा होने पर भी धृतराष्ट्र ने अपने हित और कोष को अनदेखा नहीं किया है ।"[1] धर्मयुद्ध की सारी सीमाएँ लांघकर अग्निबाण और ब्रह्मास्त्र छोडनेवाले अविवेकी शासकों के सारे कुकर्मों का फल भोगना पडता है, बेचारे सैनिकों को । रणभूमि से बच निकलने के बाद भी इन बेचारे सैनिकों के मन में शंका बनी रहती है कि "यह बचना कोई बचना है ?" क्योंकि जो बचे हैं वे अपाहिज हैं या बच्चे हैं । बच्चों को बडे होने में सालों लग जाएँगे और बचे हुए अपाहिज जीने के संघर्ष में मर जायेंगे । घायल सिपाहियों के मन में हमेशा यह डर है - "लडाईयों में हम इसी तरह मारते रहेंगे, हमारे बच्चे अनाथ होते रहेंगे, घर बरबाद होते रहेंगे, बचना केवल राजा का अधिकार है ।"[2]

"सूर्यमुख" नाटक में श्री लक्ष्मीनारायण लाल ने युद्ध के उपरांत पीछे छूट गई विधवाओं को साकार किया है । कृष्ण की मृत्यु के पश्चात् उनकी नारायणी सेना का राज्य-लिप्सा के युद्ध में डूबकर विभिन्न खण्डों में बँट जाना, हिंसा, लूट तथा व्यभिचार ही प्रमुख होना तथा युद्ध के कारण व्यक्तियों की आजीविकाएँ छीनकर उन्हें भिखारी बनाना - यही तो युद्ध के घातक परिणाम हैं । युद्ध भूमि में सभी संबन्ध खोखले हो जाते हैं । जैसा कि इसमें कहा गया है - "शोभा और सुन्दरता, युद्ध के मैदान में जब इन शब्दों की धाज्जियाँ उडती हैं, कराह और चीख से जब शून्य भरने लगता है, तब केवल एक ही चीज़ सामने होती है, एक संबन्धहीन ठंडा संसार ।"[3]

---

1. धर्मवीर भारती - अन्धा युग - पृ. 82
2. धर्मवीर भारती - अन्धा युग - पृ. 96
3. लक्ष्मी नारायण लाल - सूर्यमुख - पृ. 78

श्री बृजमोहन शाह की राय में "युद्ध एक ऐसी भयंकर मूर्खता, मानव हत्या का बर्बर उन्माद, पुनारावर्ती विध्वंस है जो मानव सभ्यता को पंगु कर नाशोन्मुख करता है । सही अर्थ में "युद्ध" किसी भी राष्ट्र के लिए मंथर आत्महत्या है ।"[1] "युद्धमन" नाटक में युद्ध में रत दो मुल्कों की क्रिया-प्रतिक्रिया का अवलोकन है । साथ ही साथ युद्धकाल में मानव-कार्य-व्यापार-जनित अनुभवों का भी चित्रण है । मनुष्य की ज़िन्दगी में युद्ध से बुरा समय दूसरा नहीं है । केवल युद्ध के समय के ही नहीं, बल्कि उसके बाद के हालात भी भयंकर होते हैं । इस नाटक में नाटककार ने युद्ध की सार्थकता और निरर्थकता पर गहनता से विचार किया है । "युद्ध" एक प्रकार की धीमी आत्महत्या है । मानवीय हत्या का उन्माद एवं विध्वंस का विस्तार मानव जाति को अपाहिज तथा खोखला बना रहा है । इसमें युद्ध की आलोचना करते हुए राष्ट्र के प्रधानमंत्री का कथन है - "युद्ध मानव जाति की नृशंस हत्या है, मानव संस्कृति और सभ्यता के विरुद्ध बर्बर, पाशविक आचरण है ।"[2] आम जनता भी युद्ध के दुष्परिणामों को जानती हैं । इसलिए वे युद्ध-नीति छोडकर, मानवजाति की रक्षा करने का नारा लगाती हैं । वे सुख से जीने की और औरों को जीने देने की प्रार्थना करती हैं -

"खुद जिओ, औरों को भी जीने दो
इसीसे है ज़िन्दगी का वास्ता
यही तो है अमन का रास्ता ।"[3]

श्री शंकर शेष के "कोमल गांधार" नाटक में महाराज से युद्ध रोकने की प्रार्थना करनेवाली गांधारी की तस्वीर खींची गयी है ।

---

1. बृजमोहन शाह - युद्धमन की भूमिका
2. बृजमोहन शाह - युद्धमन - पृ. 10
3. बृजमोहन शाह - युद्धमन - पृ. 12

उनकी राय में किसी भी कीमत पर युद्ध नहीं होना चाहिए क्योंकि पांडव सिर्फ पाँच गाँव ही माँग रहे हैं, उन्हें यह अवश्य देना चाहिए । गांधारी का कथन है – "सर्वनाश होगा, महाराज..... मैं देख रही हूँ युद्ध की विभीषिका को..... नरसंहार को..... हज़ारों सड़ती हुई लाशों के बीच अपने बच्चों की लाशों को मुझे किस अपराध का दण्ड मिलने जा रहा है; महाराज.. इतने बच्चों की माँ..... मैं नि:सन्तान हो जाऊँगी क्या....."।[1] संजय भी सत्रह दिनों के इस युद्ध को यम के सत्रह चरण मानता है । इस भयानक दृश्य के बारे में संजय कहता है – "आसपास केवल लाशें टूटे हाथ.... विच्छिन्न शरीर..... रक्त से भीगी लाल ज़मीन.....दुर्गन्ध और प्राण लेनेवाली श्मशान-शांति को चीरती हुई कराहें ।"[2]

जनता का आपसी संघर्ष

आमजनता में संगठन का अभाव और आपसी संघर्ष, उनके शोषण के कारण बन जाते हैं । उनके चरित्र की इस कमज़ोरी से हिरण्यकशिपु जैसे निरंकुश शासक का उदय होता है । श्री लक्ष्मी नारायण लाल ने "नरसिंह कथा" में अपनी राय व्यक्त की है कि "स्वराज्य के नशे में, नैतिक –अनैतिक साधनों के बीच भेद करना जिस दिन से बन्द किया, उसी समय से हिरण्यकशिपु का अवतरण होने लगा । हर जनपद के भीतर असंख्य दल एक दूसरे के विरोध में खड़े हुए । लोगों का मूलचरित्र निषेधात्मक और विध्वंसात्मक बना, उसी में से जन्म हुआ, इस अधिनायकवाद का ।"[3]

---

1. शंकर शेष – कोमल गांधार – पृ. 82
2. शंकर शेष – कोमल गांधार – पृ. 82-83
3. लक्ष्मीनारायण लाल – नरसिंह कथा – पृ. 87

जनता एक दूसरे का शोषण करती हुई, अपने पैर खुद कुल्हाडी मार रही हैं । "नरसिंहकथा" में नाटककार ने आम जनता की सुविधा-भोगी-वृत्ति को ही उनके शोषण का कारण सिद्ध किया है । जनता जीवन की छोटी-छोटी सुख सुविधाओं को छोडना नहीं चाहती, उसे बढाना ही चाहती हैं । अपने पोषण की चिन्ता में वह दूसरों का शोषण शुरू करती है, अपनी सुरक्षा के लिए अलग-अलग दल, जाति, धर्म के दुर्ग बनाती है । हिरण्यकशिपु जैसे निरंकुश शासकों का जन्म जनता की इस प्रवृत्ति के कारण ही होता है ।

किसी भी देश की आर्थिक उन्नति, वहाँ की जनता की आन्तरिक एकता पर निर्भर रहती है । लेकिन आज हमारे देश की जनता इस आपसी एकता को नहीं समझती । वे दूसरों की चिन्ता छोडकर अपनी-अपनी दुनिया में मँडराती रहती हैं । वे एक दूसरे को खूनी समझकर, शंका की दृष्टि से देखती हैं । जनता की इस मनोवृत्ति के कारण सांप्रदायिक दंगे और आपसी फूट जन्म लेती है, जो देश की प्रगति में बाधक बननेवाली बातें हैं । इसके प्रति नाटककार का सारा आक्रोश "रक्तकमल" नाटक में एम.एल.ए की वाणी द्वारा मुखरित हुआ है - "आज हमारी सरहदों पर चीन द्वारा पैदा की गई काठनाइयाँ, और इधर देश में आये दिन सांप्रदायिक दंगे, आपसी फूट और प्रान्तीयता की गन्दी भावनाओं के कारण देश के सामने यह स्पष्ट है कि किसी भी राष्ट्र की सैनिक शक्ति इस देश के आर्थिक विकास पर निर्भर करती है और आर्थिक विकास उस देश की आन्तरिक एकता पर मुनहसर है ।"[1] श्री गोविन्दराम वर्मा धार्मिक विभिन्नताओं और राजनीतिज्ञों को सांप्रदायिकता के लिए दोषी ठहराते हैं - "धार्मिक विभिन्नता के कारण समाज में विभिन्न प्रकार के तनाव

---

1. लक्ष्मी नारायण लाल - रक्त कमल - पृ. 48

पैदा होते हैं और तनावों के बढ़ाने में राजनीतिज्ञ भी भूमिका अदा करते हैं । इससे उनका स्वार्थ सिद्ध होता है ।"[1] स्वतंत्रता के इतने साल गुज़रने के बाद भी इस भारत की मिट्टी में छुआछूत और जाति-पाँति की जड़ें अब भी जम गयी हैं । भारत में समाज विभिन्न जातियों - उपजातियों में विभक्त है - वैदिक काल से अब तक हम इस साँचे से स्वयं को मुक्त नहीं कर पाए हैं । उच्च जाति और निम्न जाति विषयक यह विष धीरे-धीरे समाज में अपना दुष्परिणाम फैला रहा है । आज भी समाज में उच्च जातियों का सम्मान है तथा निम्न वर्गों का शोषण किया जा रहा है; अपने अधिकारों से भी वे वंचित रह जाते हैं । वे लोग अपने विचार भी व्यक्त नहीं कर सकते । श्री शंकर शेष ने "एक और द्रोणाचार्य" में पौराणिक आधार लेकर यह प्रदर्शित किया है कि यदि कोई व्यक्ति ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय वंश में उत्पन्न नहीं हुआ, तो योग्यता और प्रतिभा के होते हुए भी वह शस्त्र-शास्त्र -विद्या ग्रहण नहीं कर सकता । शिक्षक तक इस व्यवस्था के हाथों बिक जाते हैं और एकलव्य जैसे शिष्य उभरने के पूर्व ही कुचल दिये जाते हैं । शिक्षक का अहं भी एक विद्यार्थी के भविष्य को नष्ट कर देता है ।

"अब गरीबी हटाओ" नाटक में नाटककार इसलिए क्षुब्ध हैं कि सत्ता द्वारा हरिजनों को यह कहकर भ्रमित किया जाता है कि उनकी दुर्दशा को दूर करने के लिए अरबों रुपया व्यय किया जायेगा । ये सब झूठे आश्वासन हैं । उनमें कुछ भी सत्य नहीं हैं ।

---

1. गोविन्दराम वर्मा - भारतीय राजनीतिक व्यवस्था - पृ. 338

श्री मुद्राराक्षस ने "आला अफ़सर" में हरिजनों की दुर्दशा का गहरा संवेदनात्मक चित्र अंकित किया है -

"मुल्क में हरिजनों का चलाया ज़िकर,
बाबा गांधी ने हम सबको जीवन दिया
हैं हज़ारों बरस से यहाँ दास हैं
जानवर से भी बदतर हमें है किया
आज भी गन्दगी आपकी ढो रहे
आपके पैर में जूतियाँ बन पड़े
जीना हमको ज़मीं पर भी दूभर हुआ
आसमाँ पर महल आपके हैं खड़े "[1]

इसमें जाति-पाँति की कुव्यवस्था पर घोर असन्तोष प्रकट किया गया है ।

गरज कि स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक राजनीतिक व्यवस्था के क्रूर स्वभाव और भयानक ताकत को खोलने के साथ-साथ इस ताकत से पीड़ित और आतंकित आम आदमी की सही तस्वीर पूरे तीखेपन और तल्खाई के साथ पेश करते हैं । बेरहम परिवेश की सारी उपेक्षाओं से आहत होकर भी, बेज़ुबान खड़ी रहनेवाली प्रश्नहीन एवं प्रतिक्रियाहीन

---

1. मुद्राराक्षस - आला अफ़सर - पृ. 77

आज जनता को अपनी सीमाओं और कमज़ोरियों से अवगत कराना बड़े महत्व का काम है । स्वातन्त्र्योत्तर नाटककारों ने यह दायित्व बड़ी खूबी से निभाया है ।

पाँचवाँ अध्याय

शोषित जनसमुदाय के जुझारू तेवर

पाँचवाँ अध्याय

शोषित आमजनता के जुझारू तेवर

स्वतन्त्रता आन्दोलन एवं स्वतंत्रता प्राप्ति के सफल दौर में व्यक्ति-चेतना की उपस्थिति को नगण्य नहीं कहा जा सकता । स्वतंत्र भारत की जनता अपने अधिकारों के प्रति जागरूक है । मौलिक अधिकार, चुनाव-प्रणाली, नयी शासन प्रणाली आदि के सन्दर्भ में व्यक्ति की सजगता उसकी विकसित चेतना का प्रमाण है । आज हम देखते हैं कि हर क्षेत्र में भ्रष्टाचार व्याप्त है । शासक, जो जनता के रक्षक माने जाते हैं वही आज उसके भक्षक बन गये हैं । इसलिए व्यक्ति को आज जीवन जीने के लिए चारों तरफ़ से संघर्ष करना पड़ता है, विद्रोह करना पड़ता है ।

व्यक्ति और सत्ता का संघर्ष तो सदा से होता रहा है । आज की जनता हमेशा के लिए राजनीतिज्ञों की स्वार्थपूर्ति की शिकार बनना पसन्द नहीं करती । इसलिए वह विद्रोह का हथियार उठाती है । लेकिन सत्ता की असीम शक्ति के सामने जनता का विद्रोह भी कभी-कभी असफल हो जाता है । कभी-कभी शासकों द्वारा जनता की चेतना की निर्मम हत्या भी हो जाती है । इस दमन के कारण चेतना एक अजीब घुटन एवं छटपटाहट को अभिव्यक्ति करती है ।

निरीह आम जनता का शोषण करनेवाले इन निरंकुश शासकों से मुक्ति के लिए जनता को संघर्ष करना ही चाहिए । आमजनता

की गिरी-स्थिति एवं दु:खी अवस्था के लिए जिम्मेदार सत्ता को बेनकाब करना और जनता में आत्मविश्वास और विद्रोह की भावना उत्पन्न करके अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध लडने के लिए प्रेरणा देना लेखक का कर्तव्य है । श्री भीष्म साहनी के अनुसार "लेखक की विशिष्टता समाज के अन्दर पाये जानेवाले विरोध को भी पहचानने में और उनके कारण लोगों की ज़िन्दगी में पैदा होनेवाले दु:ख-दर्द को महसूस करने में है । उसका संवेदन इन विसंगतियों को महसूस करता है और उन्हें सामने लाता है ।"[1] मौजूदा व्यवस्था की विडम्बनाओं के प्रति जनता को सचेत करके स्वातंत्र्योत्तर युग के नाटककारों ने अपने दायित्व को बखूबी ढंग से निभाया है ।

सत्ता से फक्कड व्यक्तित्व की टकराहट

आजकल के स्वार्थी एवं क्रूर शासक जनता को धोखा देकर सत्ता हथियाते हैं । उसके बाद वे अपनी कूटनीति से जनता को प्रश्नहीन तथा निर्वीर्य करना चाहते हैं । उस समय जनता उनके वास्तविक रूप को पहचानती है और आगामी चुनाव में वे उनको सत्ता से निष्कासित कर देती हैं । शोषक शासकों का विरोध करने की हिम्मत और ताकत धीरे-धीरे वे अर्जित करती हैं । अनंतकाल तक शासकों का बहकाव नहीं चलेगा । जनता की सुप्त चेतना को जगाने की तमन्ना लेकर, जागरण की प्रेरणा देने के लिए कुछ व्यक्तित्व कभी-कभी उभर आते हैं । "कबिरा खडा बाज़ार में" में भीष्म साहनी ने मध्ययुगीन अस्तव्यस्त समाज में कर्मनिरत, क्रांतिकारी कबीर के फक्कड व्यक्तित्व को प्रस्तुत किया है । खुद नाटककार का कहना है -

---

1. नरेन्द्र मोहन देवेन्द्र इस्सर द्वारा संपादित - विद्रोह और साहित्य - पृ. 91

नाटक में उनके काल की "धर्मान्धता, अनाचार, तानाशाही आदि के सामाजिक परिप्रेक्ष्य में उनके निर्भीक, सत्यान्वेषी, प्रखर व्यक्तित्व को दिखाने की कोशिश है ।"[1] साहनी जी कबीर के व्यक्तित्व से इसलिए प्रभावित है कि मध्ययुगीन संघर्ष से भरा पूरा जनसमूह आज भी हमारे चारों ओर के परिवेश में है । कबीर जैसी क्रांतिकारी सामाजिक शक्तियाँ आज भी समाज को सुधारने के लिए सक्रिय हैं । किसी भी युग की निष्क्रिय जनता में जीवन बोध को जगाने के लिए कबीर जैसे विद्रोही व्यक्तित्व की अनिवार्यता है । श्री जोगेन्द्र सिन्ह शर्मा के अनुसार - "कबीर की विद्रोही चेतना आज भी उतनी ही प्रासंगिक है जितनी कि कबीर के समय में थी ; क्योंकि जिस समाज में हम जी रहे हैं वह समाज मध्ययुगीन सामंतीय मूल्यों पर आधारित है । जिन तानाशाही शक्तियों की बर्बरता, सांप्रदायिकता, सामाजिक बुराईयाँ आदि के खिलाफ़ कबीर लड़ रहे थे, वे आज भी समाप्त नहीं हो पाये हैं बल्कि आज ज़्यादा खतरनाक ढंग से सिर उठा रहे हैं । ऐसे माहौल में कबीर हमारे लिए सिर्फ "कबीर" नहीं रह जाते, बल्कि उन तमाम संघर्षशील शक्तियों का प्रतीक बन जाता है जो कबीर की इस लड़ाई के मोर्चे पर आज किसी न किसी रूप में सक्रिय है ।"[2] व्यवस्था की ताकत से कबीर डरनेवाले नहीं थे । बादशाह सिकन्दर लोदी के गले में पड़े हुए मोती की हार के बारे में वह अमीर खुसरो का कथन दुहराता है - "अपने बादशाह के गले में मोतियों की हार देखकर उन्होंने फरमाया था कि गरीबों के आँसू-मोती बनकर बादशाह सलामत के गले की जेबाइश बने हैं ।"[3] कबीर अपनी इसी क्रांति-चेतना के द्वारा ही वर्ण व्यवस्था

---

1. भीष्म साहनी - कबिरा खड़ा बाज़ार में - भूमिका
2. डॉ. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी - दस्तावेज़ - पृ. 44
3. भीष्म साहनी - कबिरा खड़ा बाज़ार में - पृ. 99

तोड़ना चाहते थे । हरेक युग इस तथ्य का गवाही है कि जब कभी शोषण बेरहम हो जाता है, निरीह जनता की मुक्ति के लिए किसी न किसी निर्भीक व्यक्तित्व का अवतार होता है । लक्ष्मीनारायण लाल के "कलंकी" का "हेरूप" ऐसा ही एक चारित्र है जो कल्कि अवतार की प्रतीक्षा में रत अन्धविश्वासी जनता को जागरण का सन्देश देता है । अपने प्रश्नों के ज़रिए वह, अवधूत और तांत्रिक की कूटनीति को समझाकर आमजनता को यथार्थ की ओर उन्मुख करने की कोशिश करता है ।

शवसाधना को धिक्कार कर मनुष्य की साधना पर बल देनेवाला हेरूप, इसी प्रयत्न में तांत्रिक तथा अवधूत द्वारा मारा जाता है । पर उसकी मृत्यु एक निश्चित परिणाम छोड जाती है । उसके निर्भीक आचरण तथा तर्कों से जनता जागृत हो जाती है जिससे अवधूत और तांत्रिक का ढोंग भी वे समझ लेती हैं । उन्हें मालूम हो गया कि इन्होंने ही उनकी संतानों को महामारी, अकाल और युद्ध से मार-मारकर शवसाधना की । इन्होंने सारे बुद्धों की हत्या करायी, झूठे प्रचार किये, विश्वासघात किये और सारे भ्रम फैलाये । नाटक के अन्त में तारा कहती है - "नगर की सीमा पर वह श्वेत अश्व दौड रहा है यदि तुममें से कोई उसे नहीं पकडेगा तो कोई और आकर उसे पकड़ लेगा और उस सूनी पीठ पर बैठ जायेगा ।"[1]

नाटककार की स्पष्ट धारणा तो यही है कि जनता को

---

1. लक्ष्मीनारायण लाल - कलंकी - पृ. 22

अपनी दिशा स्वयं निर्धारित करनी होगी, व्यवस्था को अपने हाथ में लेना होगा, इससे पूर्व कि कोई अन्य आकर अपनी चेतना को दबा दे और फिर से कल्कि अवतार की यातनाप्रद यात्रा शुरू हो जाये ।

जब आम जनता पशुओं की तरह निकृष्ट जीवन बिताती है और जिस क्षण वह समझ लेता है कि अपनी गिरी हुई हालत का दायित्व शासकों पर है तो उनके प्रति जनता के मन में घृणा की भावना पैदा होती है । शासकों के अत्याचार के विरुद्ध आवाज़ उठाने से भी वे नहीं हिचकतीं । डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल ने "सूर्यमुख" में विलासमय जीवन बितानेवाले राजा का विरोध करनेवाले भिखारी का बखूबी चित्रण किया है । जनता यहाँ तक विश्वास कर बैठी है कि अधर्मी शासकों के पाप के कारण ही द्वारिका नगर पर काल-कोप हुआ है । शासकों द्वारा दिये जाने वाले दान को भी वे कलंकित समझती हैं ।

लाल के "नरसिंह कथा" में भी स्वेच्छाचारी एवं निरंकुश शासन के विरुद्ध आवाज़ उठानेवाली जनचेतना की अभिव्यक्ति मिलती है । हिरण्यकशिपु जैसे स्वेच्छाचारी शासक प्रजा की दुर्बलता, आत्मकेन्द्रिता, आपसी वैमनस्य और सुखवादी मनोवांछाओं से उत्पन्न होता है । हिरण्यकशिपु के अवध्य होने का मतलब तो यही है कि उसका शरीर ही नष्ट होता है, उसका अहंकार कभी नहीं मिटेगा । लाल की राय में इस अहंकार को मिटाने की ताकत उस जनशक्ति में है जो मूल्यों में

अधिष्ठित होती है । नाटककार की मान्यता है - "मूल्यहीन शक्ति पशु है, मूल्यों से जुडकर मनुष्य नरसिंह बन जाता है ।' निरंकुश राजा को अगर कोई एक मनुष्य मारेगा तो वह भी उसी सिंहासन पर बैठ जायेगा । इस सिंहासन के विनाश के भीतर से एक नया प्रजातन्त्र उपजे, उसके लिए अनिवार्य है, मनुष्य और पशु की सारी शक्तियाँ एकाकार हों ।"[1]

हिरण्यकशिपु के पुत्र प्रह्लाद को ऐसा लगा कि अपना देश एक एकाधिपति की बेडियों में बन्धा हुआ है और मुक्ति के लिए देश अपने पुत्रों से बलिदान माँगता है । मातृभूमि की इस पुकार को वह अनसुना नहीं करता और पूरे देश को भ्रष्ट, विलासी और कायर बनानेवाले उस शासक को, चाहे वह अपने पिता ही क्यों न हो, मार डालता है और प्रजातन्त्र की रक्षा करता है । वह इस तथ्य से अवगत हो जाता है कि जनमानस के हद दर्जे की सहनशीलता के कारण ही निरंकुश शासन किसी भी देश में अपनी जडें जमाता है । जब कभी जनता की स्वतंन्त्रता छीन ली जाती है तब जनता को समस्त जीवनी शक्ति अर्जित करके उस शोषण का विरोध करना चाहिए ।

लक्ष्मीनारायण लाल के "रक्तकमल" का "कमल" जनता में प्रश्नों के स्फुलिंग जगा देता है । वह पूँजीपतियों के शोषण और इस शोषण के दुष्परिणामों से जनता को अवगत कराता है । कमल की मान्यता

---

1. लक्ष्मीनारायण लाल - नरसिंह कथा - पृ. 155

है कि जब तक जनता निजी और व्यक्तिगत स्वार्थ से ऊपर उठकर एकसूत्र में नहीं बँधेगी तब तक राष्ट्रीय चेतना का निरन्तर ह्रास होता जायेगा । देश के ढाँचे का चरमराकर ढह जाने के पहले देश को बचाने के लिए आमजनता में समय रहते चेतना जगाना अनिवार्य है । श्री नरनारायण राय की राय में नाटककार लक्ष्मीनारायण लाल ने "इस अनिवार्यता की पहचान की है और वह चाहता है कि उसके नाटक के माध्यम से लोग भी उसका साक्षात्कार करें ।"[1]

कमल की सारी चिन्ता अपने देश की जनता की सोई हुई चेतना से है और उसी को वह जगाना चाहता है - "हमारे बारह करोड़ वर्ष बीत गए । समझ लो - इतिहास हमें सिर्फ दस वर्ष का समय और दे रहा है । इस अवधि में यदि हम ने अपनी इस जनशक्ति को नहीं जगाया और उसे एकता में बाँधकर देश के निर्माण में नहीं लगाया तो हम कहीं के न रह जायेंगे । इस चेतना से शून्य हमारी महत् योजनाएँ, विधान सभा, लोक सभा सब धरी रह जाएँगी ।"[2]

कमल का पूरा विश्वास है कि समाज की तामसी शक्तियों से लड़ने की ताकत नयी पीढ़ी में अवश्य है । वह चाहता है कि अपना भतीजा पप्पु उसके पिता उद्योगपति महावीरदास के समान एक शोषक न बन जाय । कमल का विचार है कि पप्पु आनेवाली पीढ़ी है ।

---

1. नरनारायण राय - नाटककार लक्ष्मीनारायण लाल की नाट्य साधना - पृ. 67

यदि समाज के लाचार, गरीब तथा पीड़ित लोगों की वेदना से उसे अवगत करा दिया जाय तो वह अपने पिता की तरह केवल अपने आप तक सीमित व्यक्ति कभी नहीं बन जायेगा । पप्पु की अन्तरात्मा में वह चेतना की ज्योति इसलिए जगाता है कि उसकी यह क्रांति अगली पीढ़ी तक सम्प्रेषित हो सके ।

नयी पीढ़ी का जागरण

परंपरागत मूल्यों के तोड़ने और नये मूल्यों के निर्माण में नयी पीढ़ी की भूमिका उल्लेखनीय है । केवल भारत में ही नहीं, विश्व भर में जो राजनीतिक क्रांति-आन्दोलन हुए, उनमें नयी पीढ़ी आगे है । वे अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होने के कारण उसके लिए विद्रोह करने पर तुले हैं । शिक्षा, शासन एवं समाज में न्याय न मिलने के कारण उनके मन में असन्तोष की जो भावना उत्पन्न है वही इस विद्रोह का कारण है । इस असन्तोष को दूर करके समाज में परिवर्तन लाने के लिए वे अग्रसर रहती हैं ।

लाल का नाटक "एक सत्य हरिश्चन्द्र" में हरिश्चन्द्र की भूमिका निभानेवाला अवर्णों का नेता "लौका" उस जागृत जनचेतना का प्रतीक है जो दूसरों का दिया हुआ जीवन जीना नहीं चाहता । वह अपने जीवन का फैसला खुद करना चाहता है । धर्म और सामाजिक रूढ़ियों के नाम पर गरीब एवं पिछड़ी जाति की जनता का शोषण करनेवाले देवधर जैसे नेताओं के दमन एवं अधिकार-हरण के प्रति जनता के मन में विरोध की

भावना को जागृत करने के लिए लौका "सत्य हरिश्चन्द्र" नाटक को युगानुकूल अर्थ देकर प्रस्तुत करता है । देवधर के समर्थक कहे जानेवाले लोग भी इस नाटक की भूमिका में उतरकर वास्तविक स्थिति से अवगत हो जाते हैं । लौका, देवधर से स्पष्ट कह देता है - "अब जनता तुम्हें नहीं चाहती है ।..... उसे चाहती है, जो उसका हो, जिसपर उसका पूरा अधिकार हो ।"[1]

लौका के परिश्रम के कारण गाँव के गरीब लोग भी समझ गये कि अब उन्हें अपनी लडाई खुद लडनी चाहिए । "गन्पोले" भी पहले देवधर की बातों पर विश्वास करता था । लेकिन बाद में वह देवधर से प्रश्न करता है - "आप सोने के हाथ लगाते हो, मिट्टी क्यों हो जाती है ? आप बातें पक्की करते हो, पर कच्ची क्यों हो जाती हैं ?"[2] ज़ाहिर, श्रीमती रीता कुमार की राय बिलकुल सही है - "लाल का यह नाटक सत्ता और जन-सामान्य के संघर्ष का सशक्त प्रतीक है ।"[3] पिछडी हुई जनजाति के जागरण के द्वारा लाल ने समाज के निर्जीव समझे जानेवाले एक हिस्से को क्रांति की देहली पर खडा कर दिया है । उन्होंने यह भी स्पष्ट किया है कि आदमी की हैसियत की कसौटी उसकी जाति, बिरादरी या त्वचा का रंग नहीं, बल्कि कर्म की महत्ता है ।

---

1. लक्ष्मीनारायण लाल - एक सत्य हरिश्चन्द्र - पृ. 17
2. लक्ष्मीनारायण लाल - एक सत्य हरिश्चन्द्र - पृ. 61
3. श्रीमती रीता कुमार - स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक मोहन राकेश के विशेष संदर्भ में - पृ. 95

"बकरी" में सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने सत्ताधारी सुविधाभोगी वर्गों के विरुद्ध आवाज़ उठानेवाले ग्रामीण युवक की तस्वीर खींची है । इसमें अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए गांधीवाद के आदर्शों का उपयोग करनेवाले नेताओं का विरोध जब "विपती" करती है तो नेता उसे सिपाही की सहायता से कैद करते हैं । तभी एक ग्रामीण युवक जनवादी चेतना का सशक्त प्रतीक बनकर आता है, जो जनता के सारे भ्रमों को तोडता है और राजनीतिज्ञों के निहित स्वार्थों से सबको अवगत कराता है । वह जनता को विश्वास दिलाता है - "कल को वे आप लोगों को भी जेहल ले जाएँगे ।..... बकरी, बकरी है, देवी नहीं है । आसरम जाल है । ई सब चोर हैं, डाकू ।"[1] उनकी राय में झूठ बोलनेवाले से ज़्यादा बडा पापी है झूठ सहनेवाला । इसलिए गरीब और अशिक्षित ग्रामीणों को समझाने की कोशिश करता हुआ वह कहता है - "ई सब ठग हैं, आपको सबको सीधे आदमी जान ठगी करते हैं, देश में ई ठगी बहुत चल रही है । सूखा, महामारी, अन्न, जल की तबाही सब इन्हीं लोगों की वजह से है ।..... तबाही में ये तो भगवान से भी बडे हैं ।"[2] गरीबों की बकरी पकड़कर उनसे पहले पैसे, फिर वोट दुहनेवाले इन नेताओं के पास हर चीज़ का इलाज है । लेकिन गरीबी और अन्याय का नहीं है । वोट और चुनाव भी इनके लिए मज़ाक हो गया है । युवक की बातों से नेताओं के सच्चे घिनौने मुखौटे सामने आने के कारण ग्रामीण जनता जाग उठती है और उनका संकल्प है -

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - बकरी - पृ. 32, 34
2. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - बकरी - पृ. 35, 36

"बहुत हो चुका अब हमारी है बारी ।
बदलके रहेंगे ये अब दुनिया तुम्हारी ।"[1]

इस नाटक में नाटककार ने सामाजिक एवं राजनैतिक अन्याय के विरुद्ध एक साधारण आदमी की असाधारण खीझ, गुस्से और प्रतिरोध तथा व्यवस्था के विरोध में ग्रामीण जनता के विद्रोह को प्रस्तुत किया है । अतः श्री गिरीश रस्तोगी का कथन बिलकुल सही लगता है - "बकरी" बदलते हुए तेवर का सीधा-सादा प्रभावशाली नाटक है जिसमें समसामयिक सामाजिक-राजनीतिक व्यंग्य का तीखापन भी है और सारे प्रपंच, दबाव को निरन्तर झेलती हुई आम जनता का असन्तोष, विद्रोह, खीझ भरी झुँझलाहट और एक निर्णय भी है ।"[2]

एकता में शक्ति है

आजकल समाज में बढ़नेवाली विद्रूपताओं एवं कुरूपताओं के विरोध में लड़ने के लिए संगठित शक्ति की ज़रूरत है । व्यक्ति अकेले समाज में क्रांति नहीं ला सकता । सक्सेना के नाटक "लड़ाई" में अकेले व्यक्ति के जागरण को दिखाया है । "यह नाटक दिखाता है कि कैसे अकेली लड़ाई समाज और व्यवस्था को तोड़ती नहीं, स्वयं गरिमामय होते हुए भी टूटी जाती है, सार्थक नहीं रह जाती । इस ट्रैजडी को अनुभव करना संगठित प्रयास की ओर बढ़ना है ।"[3] आज़ादी के कई साल बीत जाने पर

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - बकरी - पृ. 63
2. गिरिश रस्तोगी - समकालीन हिन्दी नाटककार - पृ. 182
3. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - लड़ाई - भूमिका ।

भी, आज भी हमारी लड़ाई खत्म नहीं हुई है, जारी है । नाटक का "सत्यव्रत" आम आदमी का प्रतीक है जिसने समाज में सब कहीं भ्रष्टाचार एवं रिश्वतखोरी को ही देखा और महसूस किया कि समाज के सब लोग इसकी प्रेरणा दे रहे हैं । ऐसी हालत में वह धार्मिक-पाखंड, सड़ी-गली शिक्षा-नीति, पत्रकारिता की बेईमानी, लुच्ची-न्याय व्यवस्था, पुलिस विभाग के अन्याय, व्यापारियों के भ्रष्ट-आचरण आदि से लड़ने का निश्चय कर लेता है । लेकिन इस लड़ाई में वह अकेला रह जाता है । यहाँ तक कि उसके घरवाले भी उसकी सहायता करने को तैयार नहीं होते । उसकी यह लड़ाई अस्पताल में खतम होती है जहाँ उसे विकृत मस्तिष्क बताकर बाहर निकाला जाता है और परिवेश से काटकर अलग कर दिया जाता है । पूरी व्यवस्था से टक्कर लेते-लेते वह टूटता जाता है । इस प्रकार उसका सारा प्रयास व्यर्थ निकलता है । जब वह चारों तरफ़ फैले हुए पाखण्ड और भ्रष्टाचार पर प्रश्नचिह्न लगाना चाहता है तो भ्रष्टाचारों के उस्ताद उसे अकेला कर देते हैं । यहाँ तक कि उस पर प्रहार करते हुए वे पाशविक आनंद लेते हैं । सत्यव्रत का यह असफल संघर्ष इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि यदि शक्तिशाली सत्ता से जूझने के लिए आदमी अकेला निकल पड़ता है तो उसे भ्रष्ट व्यवस्था के चक्रव्यूह में फँसना पड़ता है । जयदेव तनेजा की राय में "सक्सेना का "लड़ाई" नाटक सत्ता के भ्रष्टाचार और व्यवस्था के मज़बूत पत्थर से सिर टकराकर टूटनेवाले अकेले व्यक्ति की गरिमामयी अकेली लड़ाई के ही त्रासद चित्र प्रस्तुत करता है ।"[1]

श्री सर्वेश्वरदयाल सक्सेना की राय में प्रत्येक देश और काल में आम जनता के लिए शोषण की बेड़ियों से छुटकारा पाने का एकमात्र

---

1. जयदेव तनेजा - आज के हिन्दी रंग नाटक - परिवेश और परिदृश्य - पृ. 150 -

उपाय व्यापक जनसंघर्ष है । अपने नाटक "अब गरीबी हटाओ" में उन्होंने इसका बखूबी चित्रण किया है कि एक लम्बे अरसे तक अपमान और शोषण की शिकार बनी आमजनता सत्ता की दुर्नीति को अस्वीकार करेगी । उसके अस्वीकार का रास्ता क्रांति का रास्ता है जो चेतना के परिवर्तन, उसके तेज और ताप से निर्मित होता है ।

सक्सेना वामपंथी विचारधारा के लेखक हैं । उन्होंने लिखा है - "मैं मानता हूँ कि हमारे समय में मार्क्सवादी दृष्टि ही ऐसी दृष्टि है जो शोषण और अन्याय की ताकतों की समझ में मदद करती है और समाज परिवर्तन की दिशा और पद्धति की ओर इंगित करती है । वह व्यक्ति के आचरणों को नये साँचे में ढालने की प्रेरणा भी देती है ।"[1] वामपंथ, शासन, समाज और धर्म में व्याप्त विसंगतियों का विरोधी है और अन्याय, असमानता एवं शोषण को जड़ से उखाड़कर एक वर्गरहित समाज स्थापित करना चाहता है । सक्सेना भी मौजूदा व्यवस्था में परिवर्तन लाने के लिए सशक्त क्रांति का हिमायती बनते हैं । श्री दशरथ ओझा ने लिखा है - "अंग्रेजों के राजतन्त्र और स्वतन्त्र भारत के प्रजातंत्र की क्रूरताओं के स्वयं भुक्तभोगी सर्वेश्वरदयाल सक्सेना शासक वर्ग के हथकंडों, विलासमय कुकृत्यों, पुनावगत अत्याचारों के साथ-साथ शोषितों की मूक वेदनाओं से विधिवत् परिचित हो गए थे । वे इसी निष्कर्ष पर पहुँचे कि उक्त दोनों राजपद्धतियाँ अपना-अपना महत्व खो चुकी हैं । उन्होंने भारतीय प्रजातंत्र की वर्तमान पद्धति को बदलने का एकमात्र यही उपाय सोचा कि शोषित-वर्ग विशेषकर ग्रामीण दलितों को सशक्त क्रांति के लिए तैयार करना ही होगा ।

---

1. कन्हैयालाल नन्दन - नाट्य परिवेश - पृ. 150 -

अत्याचारी वर्ग को पहचानकर बाहर से उन्हीं का गुणगान करते हुए - उन्हें गंडासे की चमकदार रक्तधारा में डुबाना ही होगा ।"[1]

"अब गरीबी हटाओ" में एक गाँव के कटु यथार्थ से हम भली-भाँति परिचित होते हैं । गरीबों के सारे सुख और सारे स्वप्न सत्ताधारी वर्ग छीन लेते हैं । ग्रामीण हरिजन गरिबा उन शोषित गाँववालों का प्रतीक है जो सुविधाभोगी वर्गों की साजिश के शिकार बनते हैं । इन शोषितों के मन में विरोध करने की इच्छा होते हुए भी कभी-कभी भय के कारण, कभी एक उचित नेतृत्व के अभाव में वे संघर्ष करने से हिचकते हैं । गाँव के प्रहरी का कथन इसका स्पष्ट प्रमाण है - "मैं भी यही चाहता हूँ । बहुत से लोग यही चाहते हैं । पर एक दूसरे से कहते नहीं, डरते हैं ।"[2] लेकिन सारी जनता एक साथ निष्क्रिय नहीं रह सकती । इन सबके बीच आशा की एक किरण हो सकती है जो निडर होकर इन शक्तिशाली सत्ता की ताकत का सामना करती है और दूसरों को जूझने की प्रेरणा भी देती है । जनता की सहनशीलता की भी एक हद होती है और वे दबाव से लड़ने की शक्ति खुद अर्जित करती हैं ।

निर्देशकीय वक्तव्य में भानु भारती ने लिखा है - "यह नाटक उसकी आकांक्षाओं और घुटन को, उसकी यातना और उसके संघर्ष को उस चट्टान के नीचे दिखाने की कोशिश करता है जो हर बार व्यवस्था की

---

1. डॉ. दशरथ ओझा - आज का हिन्दी नाटक प्रगति और प्रभाव - पृ. 70
2. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - अब गरीबी हटाओ - पृ. 52

सुरक्षा के नाम पर उसके ऊपर रख दी जाती रही है । उस चट्टान के नीचे से कैसे मानवीय संकल्प का बिरवा तिरछा होकर जीवन की रोशनी की खोज के लिए निकलता रहा है । यह इसमें दिखाने का प्रयत्न किया गया है ।"[1] नाटककार की राय में समाज में व्याप्त शोषण को उखाड़ फेंकना है । ग्रामीण आदमी का कथन है - "एक साँप को मारने से क्या होगा । उसका खानदान तो रहेगा । एक जड काटने से फरक नहीं पडता । असली जड काटनी होगी । फिर यह भी देखना होगा कि ज़मीन पर उसकी कटी हुई शाखा न लग पाये । नहीं तो फिर उसका खानदान पैदा हो जायेगा । जडें फैलने लगेंगी । बडी उमर होती है बरगद की । इन सालों की भी बडी उमर है ये सरपंच, ये मंत्री जाने कबसे जिन्दा है ।"[2]

अत्याचार के चुपचाप सहन को नाटककार कायरता और देशद्रोह मानते हैं । निम्नवर्ग की शोषित जनता को शोषण से बचाने के लिए, संघर्षों से जूझते हुए वे अपने नाटकों द्वारा उनको युद्ध के लिए संगठित करते रहे । उनकी घोषणा है -

"पहले फौज करो तैयार,
झनझन झलनेगा चमकाओ, चम-चम चमकाओ तलवार ।
एकसाथ सब मिलकर कूदो, गरजो दुश्मन को ललकार ।"[3]

---

1. भानु भारती - अब गरीबी हटाओ - निर्देशकीय वक्तव्य ।
2. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - अब गरीबी हटाओ - पृ. 59
3. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - अब गरीबी हटाओ - पृ. 61

वर्तमान शासन पद्धति में आमूल परिवर्तन लाने के लिए वर्ग चेतना की ज़रूरत है । इसलिए नाटककार कहते हैं -

"अकेले का बदला फलता नहीं ।
न बदला लेनेवाले को, न दूसरों को ।"[1]

श्री सुशील कुमार सिंह का नाटक "नागपाश" सरकार की आलोचना करनेवाली आम जनता का सच्चा चित्र पेश करता है । आपात्-काल में गली-कूचों और खेत-खलिहानों में उत्साही दर्शकों के बीच साहसपूर्वक खेला गया यह नाटक, आपात्काल के पूर्व, आपात्काल के बाद की स्थितियों और व्यवस्था पर तीखा प्रहार करता है । रोटी-कपडा न दे सकनेवाली सरकार को जनता निकम्मी मानती है । नेताओं की झूठ एवं बेईमानी के बारे में भी वे जानती हैं । इस नाटक में "एक" अत्याचारों के विरोध में होशियारी से आवाज़ उठाने का आह्वान देता है । जिस सरकार के प्रति जनता का विश्वास नष्ट हो चुका है, उस सरकार से देश को बचाने के लिए जनता को एकसाथ, संगठित होकर आगे बढना चाहिए । ये जनता इतनी जानती हैं कि ये मिलकर कहती हैं - "फौरन अपनी कुरसी छोडो ।..... तुम मुजरिम हो, तुम मुजरिम हो ।"[2] ऐसी जागृत जनता के चित्रण द्वारा नाटककार, मक्कारी और बेईमानी के बल पर शासन चलानेवाले राजनीतिज्ञों से निडर होकर प्रश्न करने की कूवत आम जनता में पैदा करना चाहते हैं । सत्ता में रहकर, सत्ता का दुरुपयोग करते हुए, अपने निरंकुश शासन द्वारा

---

१. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - अब गरीबी हटाओ - पृ. 60

२. सुशीलकुमार सिंह - नागपाश - पृ. 19

जनता का खून पीनेवाले इन नेताओं की असलियत से जब जनता अवगत हो जाती है तबसे इन नेताओं को समाप्त करने के लिए जनता अपनी शक्ति को पहचानने लगती है । अन्यायी सत्ता के आगे उन्हें अवतार और तलवार बनकर स्वयं अपना शासन करना पड़ता है । नाटककार की राय में अपने निजी स्वार्थों के रक्षार्थ सारे राष्ट्र को और निरीह जनता को एक भयानक नागपाश में फँसानेवाले नेताओं से देश को बचाने के लिए जनता को एक-साथ मिल-जुलकर आगे बढ़ना चाहिए ।

श्री सुशील कुमार सिंह का "आज नहीं तो कल" में भी जनता के जागरण का प्रभावशाली चित्र खींचा गया है । जब शासक जनता के प्रति अपने वादाओं को निभाने में असफल हो जाते हैं तब जनता उनके प्रति असन्तुष्ट हो जाती है । पहले जनता सबकुछ चुपचाप सहन करती थी । लेकिन आज ऐसी स्थिति नहीं है । अन्यायों का विरोध करने का साहस आज की जनता में है ।

विद्रोह का स्वर

निरंकुश शासकों के अत्याचार को सहते-सहते जब जनता ऊब जाती है तब वे संघर्ष के मार्ग को अपनाती हैं । निरन्तर पस्ती और पराजय का सामना करने के कारण उनके मन में भी प्रतिशोध की भावना जाग उठती है । वे जानती हैं कि ये झूठे शासक सुनहले भविष्य दिलाने के बहाने उनकी आस्थाओं के साथ खिलवाड कर रहे हैं । उन्हें कुएँ से निकालकर खाई में धकेल देते हैं । उनके लिए और कोई रास्ता नहीं, एक ओर कुआँ है तो दूसरी ओर खाई । शासक, जनता की भलाई के बारे में कभी सोचते नहीं ।

हमेशा उनको धोखा देते रहते हैं । आज की युवा पीढ़ी ऐसे नेताओं का विरोध करती है । उन शासकों से बदला लेने की भावना उनके मन में जब अधिक हो जाती है तो उनका मस्तिष्क ही विकृत हो जाता है । ऐसे भ्रष्टाचारी शासकों को चुन-चुनकर उनकी हत्या करने को भी वे तैयार हो जाते हैं । उन पर गालियों की वर्षा करने को भी वे संकोच नहीं करते । आज नहीं तो "मैं युवक का कथन है - "किसी उल्लू के पट्ठे का नेतृत्व नहीं चाहिए ।"[1] क्योंकि वे जानते हैं कि उन्होंने नेतृत्व के नाम पर जनता को धोखा ही दिया है । उनके पिंडे तक उतरवा लिए । अब ये उनके खाल उतारने पर भी तुले हैं । इसलिए बेचारी जनता का विचार तो यही है - "ऐसे नेताओं की आत्माएँ चाहे स्वर्ग में या नरक में विचरण करें, लेकिन इस धरती पर दोबारा अवतरित न हो क्योंकि इस देश में जो थोडी बहुत सुख-सम्पदा बची रह गयी है वह बची रहे और जनता के तन पर जो थोडे-बहुत लत्ते रह गये, वे बने रहें ।"[2]

"कोणार्क" में जगदीश चन्द्रमाथुर ने व्यवस्था की निरंकुशता से जूझनेवाले कलाकार का चित्रण करके उस यथार्थ को अंकित किया है कि जो हाथ सुन्दर मूर्तियाँ गढने के लिए छैनी उठा सकते हैं, वे आततायी से जूझने के लिए तलवार भी उठा सकते हैं । "इस नाटक की विषयवस्तु कलाकार के आत्मसंघर्ष और अन्याय के प्रतिरोध में उसके पौरुष और तेजस्विता का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत करती है ।"[3] इसमें जागृत जनशक्ति का प्रतीक है युवा शिल्पी

---

1. सुशीलकुमार सिंह - आज नहीं तो कल - पृ. 38
2. सुशीलकुमार सिंह - आज नहीं तो कल - पृ. 44-45
3. डॉ. सत्यवती त्रिपाठी - आधुनिक हिन्दी नाटकों में प्रयोगधर्मिता - पृ. 56

"धर्मपद" । जब महामात्य चालुक्य अपनी निरंकुश तानाशाही के तन्त्र द्वारा कलाकारों पर अत्याचार करने लगता है, उनके हाथ काट देने की धमकी देता है तब धर्मपद उसका विरोध करने को तैयार हो जाता है । अपने पुरुषार्थ के बारे में उसका विचार है - "जीवन के आदि और उत्कर्ष के बीच एक और सीढी है - जीवन का पुरुषार्थ ।"[1] इसलिए वह उस पुरुषार्थ के लिए अन्यायी शासकों से लडना चाहता है । उसके मत में चारों ओर अत्याचार और अकाल की लपटों के बढ़ते समय शिल्पी को एक शीतल और सुरक्षित कोने में यौवन और विलास की मूर्तियाँ बनाते नहीं रहना चाहिए । अगर उसे महाशिल्पी के अधिकार मिलें तो वह इस स्थिति में परिवर्तन लाने के लिए अवश्य कोशिश करता । वह अन्यायों का विरोध करनेवाली युवापीढी का प्रतीक है । युवा पीढी का स्वर विद्रोह का स्वर है - "बहुत हुआ, बहुत हुआ दूत । क्या हम लोग भेड-बकरियाँ हैं, जो चाहे जिसके हवाले कर दी जाएँ ? आज ही तो हमारे भाग्य का फैसला है । जिस सिंहासन को तुम आज डाँवाडोल कर रहे हो, वह हमारे ही तो कन्धों पर टिका है । क्या उस पर वह बैठेगा, जिसके कारण सैकडों घर उजड़ चुके हैं, वह, जिसने कोणार्क के सौन्दर्य-निर्माता शिल्पियों को ठोकरों से तुच्छ मान ठुकराया ? कलिंग हमारा है और उसके अधिपति हैं हमारे प्रजावत्सल नरेश श्री नरसिंह देव ।"[2] उसकी साहसिकता एवं हिम्मत का प्रमाण है उसकी बातें - "मैं जा रहा हूँ । जिस नीच से आप भीख माँगते, मैं उसे भीख दूँगा, अपने प्राणों की भीख ।"[3] अपने पिता का सुनहरा सपना "कोणार्क" का एक पामर

---

1. जगदीश चन्द्र माथुर - कोणार्क - पृ. 34
2. जगदीश चन्द्र माथुर - कोणार्क - पृ. 57
3. जगदीश चन्द्र माथुर - कोणार्क - पृ. 77

पापी एवं अत्याचारी के हाथ का खिलौना बन जाना उसे असहनीय लगता है । आतंक के हाथों में जकडी हुई कला सिसकेगी । वही कारीगर की सबसे बडी हार होगी । सबसे भारी हार । निरंकुश शासक के हाथों से कला की रक्षा करने के लिए अपनी जान तक देने को वह तैयार हो जाता है ।

स्वतंत्रता के बाद, शासकों के स्वार्थ-मोह के कारण जनता के मन में राजनीति के प्रति जो विश्वास था, वह नष्ट हो गया । शासकों की अवसरवादिता तथा कपटता के बारे में वे सचेत हो गई । परिणामस्वरूप जनता के मन में उन शासकों के प्रति रोष तथा आक्रोश की भावना पनप गई । रचनाकार ने भी इन्हीं परिस्थितियों को अपनी रचना का विषय बनाया । जगदीश चन्द्र माथुर ने "पहला राजा" में पौराणिक पात्र पृथु की कथा के माध्यम से स्वतंत्र भारत के शासक एवं शासित, सुविधाभोगी वर्ग तथा उपेक्षित मूक जनता का प्रतीकात्मक चित्र पेश किया है ।

रक्त की शुद्धता को बढावा देनेवाले मुनिलोग अनार्य कवष को ब्रह्मावर्त के शासक के रूप में स्वीकार करने को तैयार नहीं । पहला राजा बनने के मोह में पृथु भी अपने जिगरी दोस्त को धोखा देता है और पहला राजा का पद खुद संभाल लेता है । मुनियों द्वारा तिरस्कृत और दोस्त द्वारा अपमानित होते हुए भी वह समाज विरोधी नहीं बनता । पृथु की बालसखी अनार्यकन्या उर्वी की सहायता लेकर अकाल से पीडित ब्रह्मावर्त की ऊबड-खाबड और सूखी धरती में हरियाली फैलाने के लिए और उत्पन्न नहीं होने के लिए नहर खोदने एवं बाँध का निर्माण करने की प्रेरणा

वह जनता को देता है और उसका अगुआ बनता है । मात्र मुनियों की यज्ञशालाओं के संरक्षण की चिन्ता में जनता की भलाई भूल बैठे राजा पृथु को कवष और उर्वी ही समझा देते हैं कि राजा का पुरुषार्थ केवल युद्ध और संघर्ष में नहीं है । वसुन्धरा को दुहकर अभीष्ट वस्तुओं को निकालना भी उसका पुरुषार्थ है ।

जनता की आँखों में धूल झोंककर, अपने निहित-स्वार्थों की पूर्ति के लिए नित नये पैंतरे बदलने में व्यस्त झूठे शासकों की नीति अब जनता समझ गई है । शासकों की धूर्तता से भी वे बिलकुल अवगत हैं । शासकों की फिजूल खर्ची और दायित्व हीनता पर प्रश्न करनेवाली जनता का परिचय ज्ञानदेव अग्निहोत्री के नाटक "शुतुरमुर्ग" में मिलता है । वहाँ के राजा के लिए देश और प्रजा की भलाई की कम चिन्ता है । तोने की शुतुरप्रतिमा के निर्माण और उसपर स्वर्णछत्र की स्थापना के महान कार्य में ही वह जुड जाता है । जब राजा, जनता का ध्यान भूख से हटाकर युद्ध के संकट पर केन्द्रित करना चाहता है तो जनता विरोधीलाल के नेतृत्व में राजा की नीतियों के खिलाफ़ जुबान चलाने से नहीं डरती - "अब यह न कहियेगा कि अपनी सुविधा के लिए बनाई हुई नीतियाँ या सिद्धान्त या वे जो कुछ भी हैं, उनका ज्ञान आपको नहीं । क्या आप नहीं जानते कि जीवन की विषम समस्यायें शुतुर नगरी को पीस रही हैं । अनास्था, भय, भूख और दिशा-हीनता का अदृश्य कोहरा धीरे-धीरे उसे निगल रहा है । दुःखान्त नाटक शुतुरनगरी की पृष्ठभूमि पर मानव जीवन एक दुःखान्त नाटक बनकर रह गया है । और इस नाटक के सूत्रधार आप हैं । पर इतना याद रखिए

अब परदा गिरने में ज़्यादा देर नहीं है ।"[1] जब राजा कुरसी का मोह दिखाकर विरोधीलाल को सुबोधीलाल बना देता है तब जनता के संघर्ष को ज़ारी रखने के लिए भोलीराम उनका नेता बनता है ।

जिस समय भाषण मंत्री राजा का यह संदेश प्रसारित करता है कि - शुतुरमुर्ग के दर्शन राष्ट्र का परम सत्य बने और उसका आचरण, राष्ट्रीय आचरण संहिता बने - उस समय भूखी, पीडित जनता क्रुद्ध होकर राजा मुरदाबाद और शुतुरमुर्ग का नाश होने के नारे लगाती है । अपने हक के लिए लगाये गये ये नारे, नई सामाजिक चेतना के प्रतीक हैं । देश का सारा धन, सारी प्रतिभा और सारे उपकरण महज एक शुतुरमुर्ग की प्रतिमा बनाने में लगाये जा रहे हैं । देश में गरीबी है, लोग भूखों मर रहे हैं, तन ढकने को कपडा नहीं, रहने को मकान नहीं । ये गरीब-पीडित जनता, प्रजा-हित के उत्तरदायित्व को निभाने में असमर्थ शासक के विरोध में संघर्ष करना जानती है । इसलिए वे संगठित होकर अपनी गिरी स्थिति से मुक्त होने के लिए आवाज़ उठा रही हैं ।

श्री शंकर शेष के "कालजयी" में भी जनजागरण का स्वर गूँज उठता है । देश या प्रजा की चिन्ता न करके, सारे वैभव में लीन रहनेवाले शासक का विरोध न्यायकेतु और विजयकेतु करता है । यह विरोध पहले वैचारिक स्तर पर एवं शांतिमय मार्गों से होता रहता है । लेकिन

---

1. ज्ञानदेव अग्निहोत्री - शुतुरमुर्ग - पृ. 17-18

"कालजयी" इसकी ओर ध्यान भी नहीं देते । यह तो सच ही है कि अन्याय और अत्याचारों के सहने की भी एक सीमा होती है । इसलिए अंत में राजा की इस शासन नीति से ऊबकर जनता संघर्ष करती है और राजतंत्र खत्मकर प्रजातंत्र की माँग करती है । ऐसे राजा के अभिवादन के विषय में विजयकेतु का विचार है - "इस राजा का अभिवादन शीलभद्र, इस नृशंस अत्याचारी राजा से हमें घृणा है ।"[1] क्योंकि किसी व्यक्ति से गहरी घृणा होने के बाद भी उसका अभिवादन करना खुशामद है । इसलिए न्यायकेतु स्पष्ट कह देता है - "यदि देश को बचाना है तो सबसे पहले आपके हाथ काटना ज़रूरी है । कालजयी, अब हमें केवल प्रजातन्त्र चाहिए । हमें जनता का राज्य चाहिए ।"[2] जब राजा पड़ोसी देश को लेकर झूठे प्रचार का विष-वृक्ष जनता के मन में पनपाना चाहता है तब भी जनता उसकी चाल को समझ लेती है ।

इस निरंकुश शासन के पहाड के नीचे कुचली जा रही जनता अपनी आत्मा को स्वतंत्र करने के लिए आवाज़ उठाती रहती है और अपने शरीर की होली जलाकर निरंकुश सत्ता को राख करने को भी वे तैयार है । यों अपने गरम खून की स्याही से वे नया इतिहास लिखना चाहती हैं । इसमें नाटककार ने जन संगठन एवं क्रांति की प्रेरणा की भी अभिव्यक्ति दी है - "जब तक हम जनशक्ति को पूरी तरह संगठित कर क्रांति नहीं करेंगे, हमारे स्वप्न पूरे नहीं होंगे । कालजयी जैसे अत्याचारी एवं धूर्त शासक के आश्वासनों पर अब अधिक विश्वास नहीं किया जा सकता ।"[3] नाटककार

---

1. शंकर शेष - कालजयी - पृ. 25
2. शंकर शेष - कालजयी - पृ. 26
3. शंकर शेष - कालजयी - पृ. 66

ने मृत्युंजय की वाणी द्वारा प्रजातंत्र की महिमा का वर्णन भी कराया है - "महाराज, वहाँ का व्यक्ति स्वतंत्र है, वह कुछ आदर्शों के लिए जीता है । आपने आक्रमण की भाषा का प्रयोग किया तो वह देश एक व्यक्ति की भाँति उठ खड़ा होगा, उसे छेड़ना महाकाल को छेड़ना होगा ।"[1]

"शम्बूक की हत्या" में नरेन्द्र कोहली ने जनता में भ्रम पैदा करनेवाले आज के विलासी एवं स्वार्थी शासकों के विरोध में आवाज़ उठानेवाले ब्राह्मण का चित्र खींचा है । उसके शब्दों में नाटककार का सारा आक्रोश मुखरित हो उठता है - "जब शासन बेईमान हो जाता है, जनता के धन का जन कल्याण के लिए उचित प्रयोग न कर अपने विलास के लिए उसका व्यय किया जाता है, तो उत्पादन का सन्तुलन बिगड़ जाता है । लोगों को आवश्यकतानुसार खाने को नहीं मिलता । उसके भीतर रोग के कीटाणु घर करने लगते हैं । रोगों का निदान नहीं होता । उस दुर्बलता की अवस्था में व्यक्ति जीवन का संघर्ष चला नहीं पाता तो मर जाता है । उसके मरने लिए तुम दोषी हो, सरकार दोषी हो ।"[2] अपनी वाणी द्वारा जनता को गुमराह करने में लगे हुए शासकों को अपने कर्तव्य के बारे में याद दिलाते हुए ब्राह्मण प्रश्नचिह्न लगाता है - "सूखा, अकाल, महामारी - इन सबको तुम प्राकृतिक प्रकोप सिद्ध कर दोगे । इनके विरुद्ध शासन को कुछ नहीं करना चाहिए ? इनकी रोकथाम के लिए प्रयत्न करना क्या शासन का कर्तव्य नहीं है ?"[3] ये शासक विदेश में सैर-सपाटे के लिए और अपने विलास के लिए

---

१. शंकर शेष - कालजयी - पृ. 18

२. नरेन्द्र कोहली - शम्बूक की हत्या - पृ. 80

३. नरेन्द्र कोहली - शम्बूक की हत्या - पृ. 41-42

धन जोड़ने को हर चीज़ को महंगी करते रहते हैं । ब्राह्मण की राय में इन झूठे शासकों ने विद्या और ज्ञान को, झूठ बोलकर जनता को बहकाने के काम में बदल दिया है ।

अब शासक जनता को डराकर या धमकी देकर हमेशा के लिए बेवकूफ़ नहीं बना सकते क्योंकि कुछ लोगों को कुछ दिन बेवकूफ बनाया जा सकता है । लेकिन सबको सब दिन बेवकूफ बनाना आसान नहीं । दयाप्रकाश सिन्हा के "इतिहास चक्र" में अन्यायी राजा के विरुद्ध बगावत करनेवाली जनता को देख सकते हैं । जैसे बाँध तोड़कर हरहराता पानी अपने सामने पड़ी हुई सारी चीज़ों को बहा ले जाता है, नाटककार की राय में जनजागरण में भी ऐसी ताकत है ।[1] नाटक में सत्य से अनभिज्ञ राजा ने भूखों और नंगों को गोलियों से कुचल देने का आदेश दिया । लेकिन उन तोपों या गोलियों में इन भूखे-नंगों की आवाज़ को दबाने की ताकत नहीं है । आज की जनता इस बात से भी अवगत है कि उस राजा के पास जो कुछ है वे सब जनता से ही छीन लिये गये हैं ।

अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता

कला की श्रेष्ठता के लिए पहली आवश्यक वस्तु है अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता । सच्चा कलाकार अपने स्वातंत्र्य पर दबाव कभी सहन नहीं कर सकता । यह तो सही है कि आज देश में अनेक कलाकार ऐसे हैं जो धन या पद के मोह में सत्ता या शासक के आगे सिर नवाते हैं ।

---

1. दयाप्रकाश सिन्हा - इतिहास चक्र - पृ. 34-35

लेखकीय स्वतंत्रता, स्वाभिमान और प्रतिष्ठा राज्याश्रय की चमक-दमक में अपना अस्तित्व खो जाती है । ऐसे कलाकार अपने दायें हाथ में विद्रोह का शंख और बाएं हाथ में राजा की आरती का थाल सजाए रहते हैं । लेकिन ऐसे कुछ कलाकार आज भी देश में है जो सत्ता का विरोध करके अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिए संघर्ष करते हैं । ऐसा एक कलाकार है तुरेन्द्र वर्मा के "आठवाँ सर्ग" का कालिदास । वह अपनी प्रतिबद्धता - एक कलाकार की पूँजी - के लिए सत्ता से संघर्ष करता रहता है ।

जब धर्माध्यक्ष की बात मानकर राजा चन्द्रगुप्त, कालिदास से कुमारसम्भव के आठवें सर्ग को निकाल देने का आदेश देता है तो वह निडर होकर उसका विरोध करता है । उसका विचार है कि जीवन के एक मोड पर उसे सत्ता की आवश्यकता थी । लेकिन अब उसे सत्ता की सहायता नहीं चाहिए क्योंकि उसे पूरा विश्वास है - "अगर शासन मेरी रचना पर रोक लगायेगा, तो वह दूसरे राज्य में सप्तम सुर में सुनी जायेगी ।"[1] एक कलाकार को कभी अपने अस्तित्व को शासक के चरणों पर अर्पित नहीं करना चाहिए और व्यक्तित्व को गिरवी में न रखना चाहिए । उसे अपने मन की बातों को खुल्लमखुल्ला व्यक्त करना है ।

जब "आठवें सर्ग" पर व्यवस्था रोक लगाती है और एक समिति की नियुक्ति करती है तो कवि कालिदास की चेतना उस समिति

---

1. तुरेन्द्रवर्मा - आठवाँ सर्ग - पृ. 72

के सम्मुख जाकर स्पष्टीकरण देना भी नहीं चाहती, क्योंकि कालिदास को मालूम हो जाता है कि उस समिति के सदस्यों में सम्पन्न व्यवसायी दिवाकर दत्त, आयुर्वेदाचार्य और न्यायाधीश ही शामिल है । अतः कालिदास यह प्रश्न लगाता है "क्या न्यायसमिति के सदस्यों में काव्यशास्त्रीय अध्ययन, परिष्कृत सौन्दर्यबोध, भावप्रवणता, संवेदनशील सूक्ष्म दृष्टि होगी ?"[1] कालिदास की बातों से एक प्रतिबद्ध रचनाकार की पीड़ा तथा व्यवस्था की खोखली दृष्टि का परिचय मिलता है । वह उस अन्धी समिति के सामने जाना भी अपने लिये अपमान की बात समझता है । इसलिए कालिदास उस आदेश-पत्र को धर्माध्यक्ष की तरफ भूमिपर फेंक देता है और कवि की चेतना आक्रोश कर उठती है - तुम मतिमन्दों को मनाने ? समझाने ?..... अरे धर्माध्यक्ष ! मैं विष खा लूँगा, विष..... डूब मरूँगा शिप्रा में..... लेकिन किसी भी मूल्य पर ."[2]

श्री गिरीश रस्तोगी का विचार तो सही लगता है - "महाकवि कालिदास के "कुमारसम्भव" महाकाव्य के आठवें सर्ग को आधार बनाकर सुरेन्द्र वर्मा ने लेखकीय अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का मूल प्रश्न उठाया है और इसीलिए, शासन, सत्ता या राज्याश्रय की महत्वपूर्ण समस्या को लेकर लेखकीय अभिव्यक्ति स्वातन्त्र्य और शासन की टकराहट को प्रस्तुत किया है ।"[3]

---

1. सुरेन्द्र वर्मा - आठवाँ सर्ग - पृ.५८
2. सुरेन्द्र वर्मा - आठवाँ सर्ग - पृ.५९
3. गिरीश रस्तोगी - समकालीन हिन्दी नाटककार - पृ. 71

उपर्युक्त नाटकों की चर्चा से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि स्वातंत्र्योत्तर नाटककार वर्तमान व्यवस्था से संतुष्ट नहीं । हिन्दी नाटकों में ही नहीं, पूरे भारतीय नाटकों में तो यह व्यवस्था-विरोधी स्वर गूँज उठता है । नेमीचन्द्र जैन की राय में "आज पूरे भारतीय नाटक का मुख्य स्वर तीखे असन्तोष, गुस्से और सामाजिक, राजनैतिक परिवर्तन के आग्रह का है । हताशा और विसंगति का नहीं ।"[1]

नाटककारों की स्पष्ट धारणा तो यही है - जनवादी माँगों को दबाना किसी भी शासक के वश की बात नहीं । एकाधिकार के तले दबी जनता एक न एक दिन जाग उठेगी । दुनिया का इतिहास इस बात का साक्षी है कि जनवादी चेतना ने बड़े-बड़े साम्राज्यों की जड़ें हिलाकर उन्हें खोखला कर दिया है । जनवादी तेवर ने कई राष्ट्रों का नक्शा बदल दिया है ।

रत्ती भर ज़मीन से, राशन की किल्लत से, पीने के पानी से और नंगापन छिपाने के चिथड़े से वंचित जनता अपनी समस्याओं का हल खोजने के लिए पहले शासकों का मुँह ताकते - ताकते थक जाती है, तब वे प्रश्न करने लगती हैं । जब निरंकुश सत्ता इन प्रश्नकर्ताओं को अमानवीय ढंग से दबाने की कोशिश करेगी तो जनता की सुप्त चेतना जाग उठती है और यह जनवादी आन्दोलन में परिवर्तित होती है ।

---

1. नेमीचन्द्र जैन - एक जनांतिक - पृ. 146 -

जनता को कुचल डालनेवाली सत्ता की दुर्नीति ही उसके दिलो-दिमाग में क्रांति की चिनगारियाँ सुलगाती है । उस निरंकुश सत्ता को उखाड फेंकने के लिए जनता दृढ़ संकल्प लेती है । सत्ता के तानाशाहों ने जनांदोलन को बर्बरतापूर्वक कुचल दिया है ; फिर भी जनवादी चाहत को दबाने में ये तानाशाह नाकामयाब रहे हैं । स्वातंत्र्योत्तर नाटक इस नाकामयाबी की तस्वीर पेश करते हैं, जनवादी चेतना को बढावा देते हैं ।

उपसंहार

उपसंहार

प्राक्स्वतंत्रता कालीन नाटककारों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से राष्ट्रीय चेतना को जागृत करके देश को गुलामी की जंजीरों से मुक्त करने का आह्वान जनता को दिया है । इस युग के अधिकांश नाटककारों ने अपनी रचनाओं में तत्कालीन राजाओं की दुर्नीतियाँ, देशी राजाओं की आपसी फूट, दुराचारी सामन्तों की राजकीय अव्यवस्था, भ्रष्ट न्यायव्यवस्था, अंग्रेज़ों की शोषण नीति के कारण भारत की बिगडी हुई स्थिति एवं भारतीयों की हीन अवस्था तथा पराधीनता का सच्चा चित्र उभारा है ।

स्वतंत्रता संग्राम के समय भारतीय जनता का विचार था कि विदेशी शासन की समाप्ति से उनके जीवन में सुख-समृद्धि के दिन आ जाएँगे । लेकिन आज़ादी के बाद जन्म लेनेवाली युवा पीढी ने अपने चारों ओर भ्रष्टाचार, घूसखोरी, चोरबाज़ारी, महंगाई, राजनीतिज्ञों की अनैतिकता और आदर्शहीनता, स्वार्थवृत्ति, बेकारी आदि विद्रूपताओं को ही देखा । उन्होंने अपने चारों ओर उच्च मूल्यों को ध्वस्त होते हुए देखा । प्राक् स्वतंत्रता काल में हमारे देश में पद-ओहदे, सुख-सुविधा आदि त्यागकर स्वतंत्रता-संग्राम में भाग लिये नेता गण थे । लेकिन आज के अधिकांश नेता स्वार्थी, सत्तामोही एवं अवसरवादी हैं । आज की राजनीति भी यथार्थ को झुठलानेवाली तथा सत्य का गला घोंटनेवाली है जो बहुत जल्दी जनसत्ता राजनीति का रूप धारण कर रही है ।

आज शासकों में यह विश्वास रूढमूल हो चुका है कि जब तक उनमें सत्ता है तब तक उन्हें कोई बिगाड नहीं सकता । प्रचारतन्त्र के सहारे अपनी शासन व्यवस्था की गुणात्मक उपलब्धियों का खूब प्रचार करने को भी वे भूलते नहीं । देश की भलाई और आम जनता की भलाई की चिन्ता उनके दिमाग में कभी नहीं आती । वे अपनी भौतिक उपलब्धियों के सोचविचार में मग्न रहते हैं । "सर्वेश्वर दयाल सक्सेना", "सुशील कुमार सिंह", "लक्ष्मीनारायण लाल", "मणिमधुकर", "दयाप्रकाश सिन्हा" जैसे नाटककारों ने सत्ता की अन्ध नीति पर प्रहार किया है । इन नाटककारों की राय में जनता की बातों को अनसुना करनेवाले शासकों का राजभवन जनता की आकांक्षाओं और स्वप्नों का बन्दीगृह है । ज्ञानदेव आग्निहोत्री ने अपने नाटक "शुतुरमुर्ग" में वर्तमान राजसत्ता के खोखलेपन व कागज़ी योजनाओं से जनता को धोखा देनेवाले नेताओं पर करारी चोट की है ।

गांधीवाद की दुहाई देते हुए शासन में आये सत्ताधारियों के मुखौटे उतारने की सफल कोशिश भी कुछ नाटककारों ने की है जिनमें सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, सुशीलकुमार सिंह जैसे नाटककारों के नाम विशेष उल्लेखनीय है । गांधीजी का स्वप्न स्वतंत्रता के बरसों बाद भी कैसे अधूरा रह जाता है, इसकी ओर भी इस युग के कुछ नाटककारों ने संकेत किया है । नाटककारों ने सिद्ध किया है कि समाजवाद, और गरीबी हटाओ के नारे अब खोखले हो गये हैं । इस खुरदरे यथार्थ की ओर भी नाटकों में संकेत किया गया है कि आज के हर शासक सत्यमेव जयते को

आड़ में सत्य का गला घोंटता है, सत्य के पहरेदार कहे जानेवाले लोग भी व्यवस्था के हाथों बिके हुए हैं । एक अदालत में अब्दुल्ला नामक एक आदमी की हत्या पर चल रहे मुकदमे पर आधारित "अब्दुल्ला दीवाना" नाटक में लक्ष्मीनारायण लाल ने ठोस सबूत पेश किये हैं कि अब्दुल्ला की हत्या उस उच्चवर्ग ने की है जो स्वार्थ और अवसरवादिता, उन्मुक्त और असाध विलासिता के पंक में कण्ठ तक डूबे हुए है ।

"एक और द्रोणाचार्य" में श्री शंकर शेष ने यही दिखाया है कि व्यवस्था की कठपुतली बनकर जिसप्रकार द्रोणाचार्य एक निर्दोष बालक एकलव्य का अंगूठा माँग लेता है, उसी प्रकार आज के समाज में चंदू जैसे निरपराध और ईमानदार विद्यार्थी राजनैतिक साजिश का शिकार बनता है और उसका भविष्य ऊसर बन जाता है ।

दल-बदल राजनीति की चालों की ओर भी नाटककारों की दृष्टि टिकती है । बृजमोहन शाह ने "त्रिशंकु" में ऐसे अत्याचारी नेताओं की पोल खोल दी है, जो देश को खुशहाल बनाने और करप्शन से मुक्त कराने के खूब सूरत बहाने निकालकर, पुराने दल छोडकर, नये दल बनाते हैं और बडे कारखानों और लुटेरों से नकद प्राप्त करते हैं । उनसे चुनाव के क्षेत्र में किसप्रकार के हथकंडे अपनाये जाते हैं, इस असलियत की अभिव्यक्ति भी कुछ नाटककारों ने की है । नेताओं में इतनी चतुराई होती है कि वे भोली-भाली जनता को विश्वास दिलाते हैं, जनता की सेवा करना

उनका एकमात्र लक्ष्य है । जाति-पाँति की दुहाई देते हुए जनता को विभिन्न तहों में बाँटनेवाले राजनीतिज्ञ, किसी भी अनैतिक राह को अपनाते हुए अपनी चुनाव-फंड और तकलीफ फंड को भरने की कोशिश करनेवाले राजनीतिज्ञ, अपने विरोध करनेवाले लोगों को रिश्वत् देकर चुप करानेवाले राजनीतिज्ञ - इन सब के मुखौटे उतारने के लिए भी अनेक नाटकों की रचना हुई ।

यों देश के राजनैतिक माहौल पर नज़र डालने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि देश के कर्णधार कहे जानेवाले नेता राजनीति के क्षेत्र में कदम रखते ही किसी भी अनैतिक राह को अपनाने से न हिचकते, चाहे वह चापलूसी की हो, रिश्वत्खोरी की हो, खून की हो, स्वार्थ या अवसरवाद की हो । वे सब इस लिए कह रहे हैं कि उनमें सत्ता का कभी न दबनेवाला मोह है । सत्ता के भूखे होने के कारण इन नेताओं को हमेशा सत्ता हथियाने की चिन्ता रहती है और सबको अपना रौब दिखाने की रुचि रहती है । सत्ता प्राप्त व्यक्ति अंतिम साँस तक उससे चिपके रहना भी चाहता है । तथा दूसरों को उस सत्ता से वंचित करने का भी प्रयत्न करता है जिससे केवल वही एक, सब सुखों को प्राप्त कर सके । सुशीलकुमार सिंह, नरेन्द्र कोहली, शंकर शेष, दुष्यन्त कुमार, मुद्राराक्षस, मणिमधुकर, दयाप्रकाश सिन्हा जैसे नाटककारों ने अपनी रचनाओं में इस कटु सत्य को रेखांकित किया है ।

आज राजनीति सभी क्षेत्र पर हावी है । कला, विज्ञान और धर्म भी उसके ही शिकंजे में है । साहित्यकार को किसी दल या वर्ग से

नहीं, समाज से प्रतिबद्ध होना चाहिए । लेकिन आज देश में कोई भी कलाकार स्वतंत्र नहीं है । अनेक नाटककारों ने इस खुरदरे यथार्थ की ओर संकेत किया है कि एक सृजनशील कलाकार किस तरह व्यवस्था द्वारा कुचल और तोड दिया जाता है । वर्तमान मूल्यबोध से युक्त असाधारण कवि एवं साहित्यकार न व्यवस्था को एकदम छोड पाता है और न उससे समझौता करते हुए चल पाता है । आज साहित्यकार के लिए सबसे बडी समस्या, साहित्यकार के रूप में अपने व्यक्तित्व की रक्षा की है । कलाकार को कम से कम इतनी स्वतंत्रता मिलनी चाहिए कि वह राजनीतिज्ञ के गलत कार्यों को गलत कह सके, उससे असहमत हो सके, क्योंकि स्वतंत्रता ही उसकी रचना को शक्ति देती है । श्री "मोहन राकेश", "शंकर शेष", "सुरेन्द्र वर्मा", "जगदीश चन्द्र माथुर", "भीष्म साहनी" जैसे नाटककारों ने निरंकुश शासकों द्वारा कलाकारों पर दबाव का यथार्थ चित्र उपस्थित किया है । जिसप्रकार आज सत्ता, धर्म की आड लेकर जनता का शोषण कर रही है, इसका चित्रण भी "हानूश", "कबिरा खडा बाज़ार में", "आठवाँ सर्ग" आदि नाटकों में हुआ है ।

हमारे देश में आज नारी भी राजनीति के दूषित वातावरण से अपने को बचा नहीं सकती । आज के राजनैतिक नेता और शासक अपनी स्वार्थ-पूर्ति के लिए नारी के जिस्म की भी बिक्री करते हैं । अपनी स्वार्थता के आगे वे अपनी पत्नी या बेटी की भी चिन्ता नहीं करते । "शारदीया", "माधवी", "भूमिजा", "कोमल गांधार" जैसे नाटकों में इसका उल्लेख मिलता है ।

भारत एक प्रजातंत्र राष्ट्र है । प्रजा तंत्र सरकार, प्रजा द्वारा प्रजा की भलाई की सरकार है । इसलिए शासक को जनता स्वयं चुनती है । लेकिन आज जनता द्वारा चुने हुए ये शासक जनता का शोषण कर रहे हैं । जनता इन शासकों के शोषण की शिकार बन जाती है । यों शोषण के शिकार बनने के कई कारण हैं जिनमें से प्रमुख बिगडी हुई आर्थिक स्थिति, निरक्षरता, कायरता, जनता में आपसी मनमुटाव आदि । वे कभी नहीं चाहती है कि उन्हें सारी सुख-सुविधाओं से पूर्ण, ऐशो आराम की ज़िन्दगी मिले, तिमंजिले मकान के मालिक बने, करोड़पति बनकर सारी दुनिया की सैर करें, बल्कि वे मात्र यही चाहती हैं कि उन्हें कम से कम दिन में दो बार सूखी रोटी मिले, अपना नंगापन छिपाने के लिए एक चिथडा मिले और सिर के ऊपर एक छप्पर मिले । लेकिन इन बुनियादी ज़रूरतों से वे वंचित हैं । पशु की ज़िन्दगी से भी गयी बीती ज़िन्दगी बितानेवाली अभिशप्त आमजनता के दुख दर्द की अभिव्यक्ति करनेवाले नाटकों में "इतिहासचक्र", "आला अफ्सर", "गरीबी हटाओ", "रोशनी एक नदी है", "सूर्यमुख", "सिंहासन खाली है" आदि उल्लेखनीय हैं ।

निरक्षरता के कारण आमजनता बहुत जल्दी शोषण की शिकार बनती है । निरक्षर जनता प्रतिक्रियाहीन है, निष्क्रिय है और अन्धविश्वासी भी । व्यक्तिगत और निजी स्वार्थों में लगे हुए लोगों के लिए ऐसी निष्क्रिय एवं अन्ध विश्वासी जनता एक वरदान है । इन बेचारी जनता पर वे अपनी मनमानी चला सकते हैं । निरक्षरता एवं अन्धश्रद्धा के कारण आमजनता स्वार्थी नेताओं की साजिश और षड्यंत्र के जाल में किस तरह फँस जाती है, इसका प्रभावशाली चित्रण "बकरी", "एक सत्य हरिश्चन्द्र", "कलंकी" जैसे नाटकों में हुआ है ।

अपनी आँखों के सामने अन्याय की दुनिया को देखने के बाद भी अनदेखा करने की आदत मात्र अनपढ़ और निरक्षर जनता में ही नहीं, बल्कि पढ़े-लिखे, ऊँचे पद-ओहदों पर बैठी हुई बड़ी बड़ी हस्तियों में भी है । अत्याचार के सामने वे कैसे चुप्पी साधते हैं, उसकी ओर भी नाटककारों ने संकेत किया है । स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटककारों की राय में मौजूदा व्यवस्था में अधिकांश आम जनता की हैसियत उन गुड़ियों की जैसी है जिनमें चाबी भरी जाती है तो हँसती है, खेलती है, तालियाँ बजाती है और जब चाबी खत्म हो जाती है तो नीचे ढह पड़ती है ।

शोषण के हाथों अपने आपको सौंपनेवाली आम जनता की गुलामी मानसिकता पर भी नाटककारों की पैनी दृष्टि टिकती है । इस दिशा में "भीष्म साहनी", "दुष्यन्तकुमार", "सर्वेश्वरदयाल सक्सेना", "लक्ष्मीनारायण लाल", "ज्ञानदेव अग्निहोत्री" आदि नाटककारों के प्रयास सराहनीय है ।

युद्ध के दुष्परिणामों को भी आम-जनता को ही अधिक भोगना पड़ता है । इस कटु सत्य की ओर भी नाटककारों ने संकेत किया है । ज़ाहिर है कि आम जनता अपनी अभावग्रस्तता, निरक्षरता, कायरता आदि के कारण शोषण की चक्की में निरन्तर पिसी जा रही है ।

जब शोषण अपनी पराकाष्ठा पर पहुँचती है तो जनता अत्याचारी व्यवस्था के विरुद्ध आवाज़ उठाती है । क्योंकि अन्याय तथा भ्रष्टाचारों के सहने की भी एक सीमा होती है । समाज की मौजूदा व्यवस्था की सड़ी गली मान्यताओं को तोड़ डालने की मंशा लेकर, विद्रोह करनेवालों में नई पीढ़ी की भूमिका काफ़ी महत्वपूर्ण है । आम जनता की गिरी स्थिति एवं दुखी अवस्था के लिए ज़िम्मेदार सत्ता को बेनकाब करना और जनता में आत्मविश्वास और विद्रोह की भावना उत्पन्न करके अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध लड़ने की प्रेरणा देना वे अपना कर्तव्य मानते हैं । स्वातंत्र्योत्तर युग के बहुत सारे नाटक सामाजिक और राजनीतिक अन्याय के विरुद्ध एक साधारण आदमी की असाधारण खीझ, गुस्से और प्रतिशोध के दस्तावेज़ है । अधिकारों का दुरुपयोग करनेवाले, जनता का धन बरबाद करनेवाले, मक्कारी और बेईमानी के बल पर शासन चलानेवाले लोगों का विरोध करनेवाली जनता का चित्रण सुशीलकुमार सिंह ने "नागपाश" में किया है । लक्ष्मीनारायण लाल के "रक्तकमल" में भी आमजनता के जागरण का सन्देश गूँज उठता है । नाटककार की स्पष्ट धारणा तो यही है कि यदि जनशक्ति न जाग उठेगी और देश के निर्माण में न लगायी जायेगी तो पूरा देश कहीं का न रह जायेगा । 'एक सत्य हरिश्चन्द्र' नाटक में लक्ष्मीनारायण लाल ने समाज के एक बहुत बड़े निर्जीव हिस्से को धीरे-धीरे सचेत कर क्रांति की देहरी पर ला खड़ा किया है । नाटककार की राय में जो राजनीति जीवन को आलोकित नहीं करती वह राजनीति न होकर दुर्नीति है । इस नाटक में उस दुर्नीति को अस्वीकारा गया है । यूँ भी जब तक इनसान ज़िन्दा है, वह अस्वीकारी ही जाती रहेगी । उनके अस्वीकार का रास्ता क्रांति का रास्ता है जो चेतना के परिवर्तन, उसके तेज और ताप से निर्मित होता है ।

नाटक शोषित को अकेला नहीं छोडता, उसे जनप्रवाह की लय से जोडता है और मानव नियति को उसी लय के सहारे खोजता है ।

जनवादी चेतना को उभारनेवाले अन्य नाटकों में प्रमुख हैं "कोणार्क", "एक कंठ विष पाई", "युद्धमन", "कबिरा खडा बाज़ार में", "नरसिंह कथा", " शम्बूक की हत्या", "कलंकी", "बकरी", "लडाई", "आठवाँ सर्ग" आदि । इन सभी नाटकों में नाटककारों ने आम जनता को अपनी त्रासद नियति के लिए जिम्मेदार ताकतों से निडर होकर लडने की प्रेरणा दी है । नाटककारों ने यह भी महसूस किया है कि मौजूदा व्यवस्था में परिवर्तन करना उतना आसान नहीं । उसी प्रकार अकेले व्यक्ति का जागरण भी अभिशाप है । नाटककारों ने यह तथ्य भी शब्दबद्ध किया है कि राजनीति में जनता का महत्त्व स्वीकार करना ही होगा । यदि जनता की उपेक्षा की जायेगी, तो उसका परिणाम बिलकुल भयानक एवं चिन्ताजनक होगा ।

इकतालीस नाटकों का विश्लेषण करने के बाद मौजूदा व्यवस्था के राजनीतिक मूल्यबोध का स्वरूप स्पष्ट हो गया है । देश की भलाई के लिए समर्पण भाव से काम करनेवाले एक भी राजनीतिज्ञ का चित्रण नाटक में नहीं हुआ है । जितने भी जननेताओं का चित्रण नाटकों में हुआ है, वे सब मूल्यों को नकारनेवाले हैं । उनमें से कोई भी, राजनीति को मूल्यबोध के साथ जोडना नहीं चाहता । यदि वे राजनीति को मूल्यबोध

के साथ जोड़ेंगे तो वे कई व्यक्तिगत सुविधाओं से वंचित रह जायेंगे । देश के भविष्य को सुनहला बनाने की अपेक्षा अपने और अपनेवालों के भविष्य को चिरकाल तक सुनहला बनाने की कोशिश में लगे रहते हैं । महत्वाकांक्षा की भावना से बुरी तरह ग्रस्त राजनीतिज्ञों ने मानवमूल्यों का हनन किस प्रकार किया इसकी स्पष्ट अभिव्यक्ति देने में स्वातंत्र्योत्तर नाटककार सफल हुए हैं ।

नाटकों का विश्लेषण करने के बाद मुझे ऐसा ही लगा कि ये सारे के सारे नाटक चरित्रहीन राजनीतिज्ञों की असलियत को जितनी सच्चाई और तीखेपन के साथ पेश करते हैं, उससे भी अधिक मात्रा में देश की दलित-पीड़ित जनता की व्यथा को मुखरित करते हैं । नाटककारों ने आम जनता के शोषण के मूल उत्सों की खोज की है । इस खोज के फलस्वरूप देश की बिगड़ी हुई सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक तथा शैक्षणिक व्यवस्था की विरूपताओं और विकृतियों का भी पर्दाफाश हुआ है । स्वातंत्र्योत्तर नाटकों में इस सत्य की ओर भी संकेत किया गया है कि आम आदमी के शोषण के लिए एक हद तक वे ही दोषी है जो प्रश्नहीन, प्रतिक्रियाहीन और परिवर्तन से भयभीत होकर शासक की हर आज्ञा का पालनकर्ता बनना चाहता है । जनता को अपने चरित्र की कमज़ोरी से अवगत कराते हुए नाटककार उन्हें यह आह्वान देते हैं कि वे गुलामी मानसिकता और निष्क्रियता के छिलके को तोड़कर बाहर आ जाएँ । स्वातंत्र्योत्तर नाटकों में अभिव्यक्त जनवादी चेतना भी बिलकुल सराहनीय है । नाटककारों ने समय के ज्वलंत प्रश्न से जूझते हुए आम आदमी को यह आह्वान दिया है

कि वे अपने अधिकारों के प्रति सतर्क हो उठें, अपने संगठन और कर्तव्यों के प्रति जागरूक और निष्ठावान् बनें, हर प्रकार के छल प्रपंच और शोषण का मुंहतोड़ जवाब दें । निष्कर्ष तो यही है कि स्वातंत्र्योत्तर युग के प्रतिनिधि नाटककारों की रचनाओं में देश के राजनैतिक माहौल के सच्चे और नंगे चित्र दिखाई पड़ते हैं । दरअसल ये नाटक देश के आम आदमी की तकलीफ के नाटक हैं ।

संदर्भ ग्रंथ-सूची

संदर्भ ग्रंथ-सूची

(क) मौलिक ग्रंथ

1. अन्धा युग	धर्मवीर भारती, किताब महल, इलाहाबाद, तृ.सं. 1968
2. अब गरीबी हटाओ	सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, लिपि प्रकाशन, दरियागंज, प्र.सं. 1981
3. अब्दुल्ला दीवाना	लक्ष्मीनारायण लाल, राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली, द्वि.सं. 1976.
4. अरे मायावी सरोवर	शंकर शेष, पराग प्रकाशन, दिल्ली - 32, द्वि.सं. 1981.
5. आज नहीं तो कल	सुशीलकुमार सिंह, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 1979.
6. आठवाँ सर्ग	सुरेन्द्रवर्मा, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 1976.
7. आला अफसर	मुद्राराक्षस, अक्षर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वि.सं. 1983.
8. आषाढ़ का एक दिन	मोहन राकेश, राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली, तृ.सं. 1975.
9. आहुति	हरिकृष्ण प्रेमी, हिन्दी भवन, इलाहाबाद, द्वि.सं. 1962.
10. इतिहास चक्र	दयाप्रकाश सिन्हा, अक्षर प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 1973.

11. उत्तर प्रियदर्शी	अज्ञेय, अक्षर प्रकाशन, दिल्ली, प्र. सं. 1967.
12. एक और द्रोणाचार्य	शंकर शेष, पराग प्रकाशन, दिल्ली, चतुर्थ सं. 1983.
13. एक कंठ विष पाई	दुष्यन्तकुमार, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, तृ. सं. 1976.
14. एक सत्य हरिश्चन्द्र	लक्ष्मीनारायण लाल, राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली, प्र. सं. 1976.
15. कथा एक कंस की	दयाप्रकाश सिन्हा, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. सं. 1992.
16. कबिरा खडा बाज़ार में	भीष्म साहनी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. सं. 1981.
17. कलंकी	लक्ष्मीनारायण लाल, नाशनल पब्लिशिंग हाउस, दरियागंज, दिल्ली, प्र. सं. 1969.
18. कालजयी	शंकर शेष, सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली, प्र. सं. 1987.
19. कुरुक्षेत्र	रामधारी सिंह दिनकर, श्री अजन्ता प्रेस लिमिटेड, पटना, तृ. सं. 1946.
20. कोणार्क	जगदीश चन्द्रमाथुर, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, मूल सं. 2008 वि.
21. कोमल गान्धार	शंकर शेष, पराग प्रकाशन, शाहदरा, दिल्ली, प्र. सं. 1982.

22. चन्द्रगुप्त	जयशंकर प्रसाद, प्रसाद प्रकाशन, प्रसाद मन्दिर, वाराणसी, सं. 1981.
23. टूटते परिवेश	विष्णु प्रभाकर, भारतीय साहित्य प्रकाशन, मेरठ 1, प्र.सं. 1974.
24. त्रिशंकु	ब्रजमोहन शाह, इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली - 110051, तृ.सं. 1982.
25. नरसिंह कथा	लक्ष्मीनारायण लाल, दि मैकमिलन कंपनी आफ इंडिया लिमिटेड, दिल्ली, प्र.सं. 1975.
26. नागपाश	सुशीलकुमार सिंह, साहित्य सहकार प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 1977.
27. पहला राजा	जगदीश चन्द्र माथुर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली - 110002, सं. 1980.
28. प्रजा ही रहने दो	गिरिराज किशोर, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली-2, प्र.सं. 1977.
29. प्रताप प्रतिज्ञा	जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द, हिन्दी भवन, इलाहाबाद, सत्रहवाँ सं. 1960.
30. बकरा	सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, लिपि प्रकाशन, दिल्ली, चतुर्थ सं. 1981.
31. भारत दुर्दशा	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, तृ.सं. 1962.
32. भूमिजा	सर्वदानन्द, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी, प्र.सं. 1960.

33. मरजीवा	मुद्राराक्षस, राजेश प्रकाशन, कृष्णनगर, दिल्ली ।
34. माधवी	भीष्म साहनी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. सं. 1984.
35. मिस्टर अभिमन्यु	लक्ष्मीनारायण लाल, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दरियागंज, दिल्ली-6, प्र. सं. 1971.
36. युद्धमन	बृजमोहन शाह, इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली, प्र. सं. 1976.
37. रक्तकमल	लक्ष्मीनारायण लाल, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली - 8, द्वि. सं. 1963.
38. रस गन्धर्व	मणिमधुकर, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली - 6, सं. 1925.
39. रोशनी एक नदी है	लक्ष्मीकांत वर्मा, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. सं. 1974.
40. लड़ाई	सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, लिपि प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. सं. 1979.
41. विक्रमादित्य	उदयशंकर भट्ट, हिन्दी भवन, इलाहाबाद, पाँचवाँ सं. 1957.
42. शम्बूक की हत्या	नरेन्द्र कोहली, विवेक प्रकाशन, दिल्ली - 32, प्र. सं. 1975.
43. शारदीया	जगदीश चन्द्र माथुर, सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली, प्र. सं. 1959.

44. शुतुरमुर्ग	ज्ञानदेव अग्निहोत्री, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, कलकत्ता, प्र.सं. 1968.
45. सिंहासन खाली है	सुशीलकुमार सिंह, लिपि प्रकाशन, दिल्ली - 110051, प्र.सं. 1974.
46. सूर्यमुख	लक्ष्मीनारायण लाल, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दरियागंज, दिल्ली-6, प्र.सं. 1968.
47. स्कन्दगुप्त	जयशंकर प्रसाद, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, चतुर्थ सं. 1978.
48. हानूश	भीष्म साहनी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 1977.

ख. ऐतिहासिक ग्रंथ

49. कांग्रेस का इतिहास प्रथम और द्वितीय भाग	डॉ. पट्टाभि सीता रामय्या सस्ता साहित्य मंडल, दिल्ली, प्र.सं. 1948.
50. कांग्रेस के सौ वर्ष-संघर्ष और सफलता का इतिहास	मन्मथनाथ गुप्त, राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली, प्र.सं. 1985.
51. भारतीय राजनीतिक व्यवस्था	गोविन्द राम वर्मा, मैक मिलन कंपनी आफ इंडिया, नई दिल्ली, सं. 1977.
52. भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास	रामगोपाल, सुलभ प्रकाशन, लखनऊ, द्वि.सं. 1986.
53. हिन्दी साहित्य का इतिहास	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी ।

ग. आलोचनात्मक ग्रंथ

54. अन्धा युग: एक सृजनात्मक उपलब्धि	सुरेशगौतम, साहित्य प्रकाशन, दिल्ली -6, प्र.सं. 1973.
55. आज का हिन्दी नाटक प्रगति और प्रभाव	डॉ. दशरथ ओझा, राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली - 110006, प्र.सं. 1984.
56. आज के हिन्दी रंग नाटक परिवेश और परिदृश्य	जयदेव तनेजा, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 1980.
57. आठवें दशक की हिन्दी कविता में सामाजिक बोध	डॉ. नामदेव उतकर "नान्देडी", अतुल प्रकाशन, कानपुर -12, प्र.सं. 1989.
58. आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में राजनैतिक एवं आर्थिक चेतना	डॉ. पीताम्बर सरोदे, अतुल प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं. 1887.
59. आधुनिक हिन्दी नाटक एक यात्रा दशक	नरनारायण राय, भारती भाषा प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 1979.
60. आधुनिक हिन्दी नाटक और नाट्यकार	डॉ. रामकुमार गुप्त, जवाहर पुस्तकालय, मथुरा, सं. 1925.
61. आधुनिक हिन्दी नाटक चरित्र-सृष्टि के आयाम	डॉ. लक्ष्मीराय, तक्षशिला प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, प्र.सं. 1979.
62. आधुनिक हिन्दी नाटकों में प्रयोगधर्मिता	डॉ. सत्यवती त्रिपाठी, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 1991.
63. आधुनिक हिन्दी मराठी नाटक	डॉ. माधव सोनटक्के, संचयन, गोविन्दनगर, कानपुर, प्र.सं. 1988.

64. एक जनांतिक	नेमीचन्द्र जैन, संभावना प्रकाशन, रेवती कुंज, हापुड, प्र.सं. 1981.
65. गान्धी विचारधारा और हिन्दी उपन्यास	डॉ. अरूणा चतुर्वेदी, कल्पकार प्रकाशन, लखनऊ, प्र.सं. 1983.
66. द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास	लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली, प्र.सं. 1962.
67. नयी कविता के मूल्यबोध	शशि सहगल, अभिनव प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 1976.
68. नई कविता मूल्य मीमांसा	डॉ. बैजनाथ सिंह, मंथन पब्लिकेशन्स, हरियाणा, प्र.सं. 1981.
69. नई कविता में वैयक्तिक चेतना	डॉ. अवध नारायण त्रिपाठी, जवाहर पुस्तकालय, मथुरा, प्र.सं. 1979.
70. नाटककार जगदीश चन्द्रमाथुर	गोविन्द चातक, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली -6, प्र.सं. 1973.
71. नाटककार लक्ष्मीनारायण लाल	डॉ. सरजू प्रसाद मिश्र, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, प्र.सं. 1980.
72. नाटककार लक्ष्मी नारायण लाल: की नाट्य साधना	नरनारायण राय, सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 1979.
73. नाटककार शंकर शेष	डॉ. सुनीलकुमार लवटे, संजय प्रकाशन, कोल्हापुर, प्र.सं. 1982.
74. नाट्य-चिन्तन नये संदर्भ	डॉ. चन्द्र, साहित्य रत्नालय, 37/50, प्र.सं. 1987.

75. नाट्य परिवेश	सं. कन्हैयालाल नन्दन, शब्दकार, 2203, तुर्कमानगेट, दिल्ली-6, प्र. सं. 1981.
76. निराला साहित्य में युगीन समस्यायें	डॉ. सरोज मार्कण्डेय, विद्या प्रकाशन, कानपुर -6, प्र. सं. 1989.
77. प्रसाद का नाटक	सूर्यप्रसाद दीक्षित, राधाकृष्ण प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली ।
78. प्रसादोत्तर कालीन नाटक	भूपेन्द्र कलसी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र. सं. 1977.
79. प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यासों: में सामाजिक चेतना	डॉ. अमरसिंह जगराम लोधा, अमर प्रकाशन, अहमदाबाद, द्वि. सं. 1985.
80. फणीश्वरनाथ रेणु का कथा-शिल्प	डॉ. (श्रीमती) रेणु शाह, राजस्थानी ग्रंथगार, जोधपुर, प्र. सं. 1990.
81. बदलते मूल्य और आधुनिक हिन्दी नाटक	डॉ. ओम प्रकाश सारस्वत, मंथन पब्लिकेशन्स रोहतक, प्र. सं. 1983.
82. बीसवीं शताब्दी के हिन्दी नाटकों का समाज शास्त्रीय अध्ययन	डॉ. लाजपतराय गुप्त, कल्पना प्रकाशन, कबाडी बाज़ार, मेरठ कैण्ट, प्र. सं. 1974.
83. भारतेन्दु के नाटक	डॉ. भानुदेव शुक्ल , ग्रन्थम, कानपुर-12, प्र. सं. 1972.
84. भारतेन्दु साहित्य	श्री रामगोपाल सिंह चौहान, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, प्र. सं. 1957.

85. महात्मागान्धी का सन्देश	सं. यु. एन. मोहन राव, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, प्र. सं. 1959.
86. महिला उपन्यासकारों की रचनाओं में बदलते सामाजिक सन्दर्भ	डॉ. शीलप्रभा वर्मा, विद्या विहार, कानपुर-12, प्र. सं. 1987.
87. मानव-मूल्य और साहित्य	धर्मवीर भारती, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, प्र. सं. 1960.
88. मुक्तिबोध युग चेतना और अभिव्यक्ति	डॉ. आलोक गुप्त, गिरनार प्रकाशन, महेसाना, उ. गुजरात, प्र. सं. 1985.
89. मोहन राकेश और उनके नाटक	गिरीश रस्तोगी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र. सं. 1976.
90. रचना का सामाजिक आधार	डॉ. सूरज पालीवाल, साहित्यागार, जयपुर, प्र. सं. 1990.
91. लक्ष्मीनारायण लाल का रंग-दर्शन	डॉ. सुभाष भाटिया, हिन्दी साहित्य परिषद्, मणिनगर, प्र. सं. 1990.
92. विद्रोह और साहित्य	सं. नरेन्द्र मोहन, देवेन्द्र इस्सर, साहित्य भारती, दिल्ली, प्र. सं. 1974.
93. शंकरशेष का नाट्य साहित्य	डॉ. प्रकाश जाधव, साहित्य रत्नालय, कानपुर, प्र. सं. 1988.
94. समकालीनता के अतीतोन्मुखी नाटक	रमेश गौतम, नाचिकेता प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. सं. 1979.

95. समकालीन परिवेश और प्रासंगिक रचना संदर्भ — अशोक हजारे, डॉ. लोनटक्के, विकास प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं. 1988.

96. समकालीन हिन्दी उपन्यास- कथ्य चेतना — डॉ. प्रेमकुमार, इन्दु प्रकाशन, अलीगढ़, प्र.सं. 1983.

97. समकालीन हिन्दी नाटककार — गिरीश रस्तोगी, इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 1982.

98. समकालीन हिन्दी नाटक- कथ्य चेतना — चन्द्रशेखर, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, प्र.सं. 1982.

99. समकालीन हिन्दी नाटक चेतना के आयाम — सरला गुप्ता "भूपेन्द्र", पंचशील प्रकाशन, जयपुर, प्र.सं. 1987.

100. साठोत्तर हिन्दी काव्य में राजनीतिक चेतना — डॉ. एस. गम्भीर विद्याविहार, कानपुर, प्र.सं. 1992.

101. साठोत्तर हिन्दी नाटक में त्रासद तत्व — मंजुला दास, पराग प्रकाशन, शाहदरा, दिल्ली, प्र.सं. 1988.

102. साठोत्तरी हिन्दी उपन्यासों में राजनीतिक चेतना — कृष्ण कुमार बिस्सा "चन्द्र", दिनमान प्रकाशन, दिल्ली-110006, प्र.सं. 1984.

103. साठोत्तरी हिन्दी कहानी और राजनीतिक चेतना — डॉ. जितेन्द्र "वत्स", साहित्य रत्नाकर, कानपुर-12, प्र.सं. 1989.

104. साहित्य और आधुनिक युगबोध — देवेन्द्र इस्सर, कृष्ण ब्रदर्स, अजमेर, प्र.सं. 1973.

105. साहित्य का परिवेश — सं. सच्चिदानन्द वात्स्यायन, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, प्र.सं. 198

106.	साहित्य रसायन	डॉ. लाल चन्द्रगुप्त "मंगल", सद्भावना प्रकाशन, कुरुक्षेत्र - 132118, प्र.सं. 1981.
107.	साहित्य और सामाजिक सन्दर्भ	शिवकुमार मिश्र, कला प्रकाशन, दिल्ली - 110032, प्र.सं. 1977.
108.	साहित्य और सामाजिक मूल्य	डॉ. हरदयाल, विभूति प्रकाशन, शाहदरा, दिल्ली, प्र.सं. 1985.
109.	साहित्य का समाज शास्त्र	डॉ. नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, प्र.सं. 1982.
110.	स्वातंत्र्योत्तर गीतिनाट्य	डॉ. शिवशंकर कटारे, प्रगति प्रकाशन, आगरा, प्र.सं. 1929.
111.	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास - बदलते सामाजिक परिप्रेक्ष्य में	डॉ. उमेश प्रसाद सिंह, शिक्षा निकेतन, वाराणसी, प्र.सं. 1988.
112.	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास: मूल्य संक्रमण	डॉ. हेमेन्द्र कुमार पानेरी, संधी प्रकाशन, जयपुर, प्र.सं. 1974.
113.	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास और ग्रामचेतना	ज्ञानचन्द्रगुप्त, अभिनव प्रकाशन, दिल्ली - 31, प्र.सं. 1974.
114.	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी काव्य	डॉ. रामगोपाल सिंह चौहान, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, प्र.सं. 1965
115.	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी काव्य युगीन संदर्भ	सुभद्रा पैठणकर, विद्या विहार, कानपुर, प्र.सं. 1988.
116.	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक	डॉ. रामजन्म शर्मा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र.सं. 1985.

117.	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक मोहन राकेश के विशेष संदर्भ में	डॉ. (श्रीमती) सीता कुमार, विभू प्रकाशन, साहिबाबाद-5, प्र. सं. 1980.
118.	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक समस्या और समाधान	डॉ. दिनेश चन्द्र वर्मा, अनुभव प्रकाशन, श्रीनगर, कानपुर, प्र. सं. 1987.
119.	स्वाधीनता कालीन हिन्दी साहित्य के जीवन-मूल्य	डॉ. दिनेश चन्द्र वर्मा, अनुभव प्रकाशन, कानपुर, प्र. सं. 1987.
120.	हरिकृष्ण प्रेमी के नाटकों में राष्ट्रीय भावना	जीवन लता कालरा, सूर्यप्रकाशन, नई सड़क, दिल्ली-6, प्र. सं. 1976.
121.	हिन्दी कथा साहित्य में भारत विभाजन	डॉ. हेमराज "निर्मम", संजय प्रकाशन, दिल्ली - 110052, प्र. सं. 1987.
122.	हिन्दी नाटक और नाटककार	डॉ. सुरेश चन्द्र शुक्ल और कु. नीलम मलन्द, पुस्तक संस्थान, कानपुर, प्र. सं. 1977.
123.	हिन्दी नाटक में विद्रोह की परंपरा	डॉ. किरन चन्द्र शर्मा, विचार प्रकाशन, दिल्ली - 110053, प्र. सं. 1991.
124.	हिन्दी नाटक पुनर्मूल्यांकन	डॉ. सत्येन्द्र तनेजा, ग्रन्थम, रामबाग, कानपुर - 12, प्र. सं. 1971.
125.	हिन्दी नाटक की भूमिका मध्यवर्ग के सन्दर्भ में	डॉ. मूलचन्द गौतम, जागृति प्रकाशन, अलीगढ़, प्र. सं. 1982.
126.	हिन्दी नाटक प्राक्कथन और दिशाएँ	डॉ. विजकान्तधर दुबे, अनुभव प्रकाशन, श्रीनगर, कानपुर, प्र. सं. 1986.

127.	हिन्दी नाटक के प्रमुख हस्ताक्षर	डॉ. रामकुमार गुप्त, अमर प्रकाशन, सदर बाज़ार, मथुरा, प्र. सं. 1980.
128.	हिन्दी नाटक और लक्ष्मीनारायण लाल की रंगयात्रा	डॉ. चन्द्रशेखर, प्रवीण प्रकाशन, नई दिल्ली -1, प्र. सं. 1979.
129.	अखिल विज्ञान कोश - भाग-4	
130.	विश्व विज्ञान कोश - भाग-2	
131.	व्यावहारिक हिन्दी अंग्रेज़ी कोश	महेन्द्र चतुर्वेदी और भोलानाथ तिवारी
132.	संस्कृत हिन्दी कोश	वामन शिवराम आप्टे

घ. पत्र-पत्रिकायें

133.	अभ्युदय	जनवरी, 1937
134.	ज्योत्सना	अक्टूबर, 1990.
135.	नया प्रतीक	मई, 1976.
136.	नयी धारा	अगस्त, 1968
137.	लहर	जनवरी, 1966
138.	साप्ताहिक हिन्दुस्तान	अक्टूबर, 1985.

ङ. अंग्रेजी ग्रंथ

China Strikes	: Dr. Satya Narayan Sinha, Ramakrishna & Sons, New Delhi - 1964.
Indian Government & Politics	Dr. A. S. Narang, Gitanjali Publishing House, New Delhi - 1989.
Malayala Manorama Year Book	1988, 1993.
Manorama Year Book	1988, 1991, 1993
The Constitution of India.	
The Discovery of India	Nehru, Maridian Books Publishing
The Politics of Aristotle	Ernest Barker, Delhi Oxford University Press, Bombay.
The Times of India Directory and Year Book	1968